शरत के लतीफे

डा० महादेव साहा

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी : १ :

द्वितीय संस्करण
फरवरी, १९५९

मूल्य : २ रुपये २५ नये पैसे

प्रकाशक : हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
पो० बॉ० नं० ७०, ज्ञानवापी, वाराणसी—१
मुद्रक : गौरीशंकर प्रेस, मध्यमेश्वर, वाराणसी

अनुक्रम

—:०:—

चरित्रहीन

बाजे शिवपुर वाले मकान पर शरत्चन्द्र एक दिन सावित्रीप्रसन्न चट्टोपाध्याय से बातें कर रहे थे।

शरत्चन्द्र ने कहा—देखो सावित्री, मेरे "चरित्रहीन" को लेकर एक बार बड़े मजे की बात हुई। इस बार काशी में यह कहानी सुन आया हूँ। तुम्हें सुनाता हूँ।

इस बार काशी में 'उत्तरा' सम्पादक सुरेश चक्रवर्ती के यहाँ टिका। एक दिन सबेरे कुछ बंगाली सज्जन आकर बोले कि वहाँ के बंगाली मुझको देखना चाहते हैं। इसलिए उन्होंने एक सभा का आयोजन किया उसमें मुझे जाना होगा। उन्हें मालूम था कि कुछ बोलने के लिए कहा गया तो शायद मैं नहीं जाऊँगा। इसलिए वे केवल उपस्थित रहने का ही आमन्त्रण कर गये।

उनके अनुरोध की मैं उपेक्षा नहीं कर सका। जाने का वचन भी दे दिया।

सभा में माला-चन्दन धूप-धूना किसी भी चीज की कमी नहीं थी। उनके स्वागत में सच्ची आन्तरिकता थी, वहाँ जाकर बड़ा आनन्द आया।

सभा के अन्त में जब करीब सभी जा चुके थे, मैं भी उठने की बात सोच रहा था कि इसी समय दो विधवाएँ मेरे सामने आकर खड़ी हुईं। एक की उम्र हो चुकी थी, दूसरी की उम्र कम, यही बीस-बाईस की होगी। कम उम्र वाली विधवा निकट आ प्रणाम करके मेरे मुँह की

हो गया। इस बात को देखकर लड़के ने एक दिन पिता से कहा कि वह मुझे नहीं पढ़ाएगा। पिताने भी मानो मुझ पर झुंझलाकर कुछ दिनों के लिए मुझे बराहनगर (कलकत्ता) ननिहाल भेज दिया। बराहनगर आई तो सही में मगर मेरा दिल वहीं अटक रहा। कुछ ही दिन बीते होंगे कि हम दोनों में चिट्ठी-पत्री चलने लगी। एक दिन अचानक वह लड़का कलकत्ते आ पहुँचा। अब दोनों के नियमित रूप से मिलने में कोई बाधा नहीं रही। अंत में एक दिन हम लोगों ने तय किया कि जो कुछ भी क्यों न हो हमलोग कहीं भागकर सदा के लिए मिलित होंगे।

तय हुआ कि उस रात को मैं जगी रहूँगी। दो बजे वह गाड़ी लेकर आएगा, नीचे जिस कमरे में मैं सोती हूँ उसकी खिड़की पर वह दस्तक देगा, मैं भी निकल पड़ूँगी।

उस दिन की बात मैं आसानी से नहीं भूलूँगी। सारा समय एक विचित्र बेचैनी चिन्ता और उत्तेजना के बीच कट गया। शाम को मैंने अपने ममेरे भाई को लाइब्रेरी से एक उपन्यास ला देने के लिए कहा। कहीं सो न जाऊँ इस लिए किताब पढ़कर रात जागना तय था।

ममेरे भाई ने जो मोटा उपन्यास लाकर मेरे हाथों में दिया उस पर उसका नाम "चरित्रहीन" लिखा हुआ था। देखते ही मेरा कलेजा धड़कने लगा। सोचा, प्रकृति का कैसा परिहास है!

खाने पीने के बाद सभी सोने चले गए। मैंने किताब हाथों में लिए कमरे की अर्गला बन्द कर ली।

किताब जब खतम हुई तब रात के दो बज रहे थे। तब तक मैंने अपना कर्त्तव्य निश्चित कर लिया था। आपकी किरणमयी ने मुझे बचा लिया।

यथासमय खिड़की पर दस्तक पड़ी। समझ गई कि वह आ गया

है। खिड़की पर जाकर उससे बिनती की कि मुझे क्षमा करो, मैं नहीं जा सकूँगी!

इस बात को सुनकर उसके निराश मुख की छवि मुझे चिरकाल याद रहेगी। लगा कि मैंने मानो उसके पैरों के तले से धरती हटा ली हो, सारा इन्तजाम हो गया है, यहाँ तक कि रेल का टिकट भी खरीद लिया गया है।

मैंने हाथ जोड़कर कहा—अन्याय किया है, तुम मुझे क्षमा करो। वह थोड़ी देर तक लाचार खड़ा रहा फिर एक लंबी सांस लेकर चला गया।

इसके बाद ही मैं अपनी इस नानी के संग काशी चली आई। उसके भी आज साल भर हो गए। आज भी सोचती हूँ, आपकी किरणमयी ने मुझे उस रात बचा लिया था। चरित्रहीन पढ़कर आपको देखने की मेरी बड़ी इच्छा हुई थी। बाबा विश्वनाथ यह इच्छा इतनी जल्दी पूरी करेंगे, इस बात को मैंने कभी नहीं सोचा था।

उस दिन अगर आपका 'चरित्रहीन' न पढ़ती तो आज मैं कहाँ जाती, मेरी क्या दशा होती, उसे सोच भी नहीं सकती। आप ही ने मेरी रक्षा की है, मैं आपकी चिरकृतज्ञ हूँ।

कहानी खतम करके शरत्चन्द्र बोले—देखो सावित्री, मेरा 'चरित्रहीन' जब पहले-पहल निकला तो इसको लेकर मुझे कुछ कम गाली गलौज नहीं सुननी पड़ी थी। मेरे ऊपर से उन दिनों निन्दा, विद्रोह, आक्रमण का एक तूफान-सा बह चला था। वह तूफान अब भी कभी-कभी उठता है। फिर भी सोचता हूँ, आलोचक मेरे चरित्रहीन के बारे में कुछ भी क्यों न कहें, वह इस तरह से कम-से-कम एक लड़की को भी बचा सका था यही मेरी सबसे बड़ी सान्त्वना है।

चप्पल चोरी

शरत्चन्द्र तब कलकत्ते में रहते थे, यतीनदास रोड बालीगंज कलकत्ता में। शिल्पी सतीश सिंह के मकान पर उन दिनों हर इतवार की शाम को 'रसचक्र' की नियमित गोष्ठी होती थी।

शरत्चन्द्र का मकान पास ही था। वे अक्सर गोष्ठी में जाते और तरह-तरह के लतीफे सुनाया करते थे।

उस दिन 'रसचक्र' की विशेष गोष्ठी थी। गाने-बजाने, खाने-पीने का काफी अच्छा आयोजन था। चक्र के बाहर के भी काफी आदमी न्योते गए थे। अतिथियों का आना शुरू हो गया था। शरत्चन्द्र पहले ही आ गए थे। इसी समय चक्र के सदस्य नूटबिहारी मुखोपाध्याय आ पहुँचे, जूते उतारते हुए बोले—रास्ते के किनारे नीचे वाले तल्ले के कमरे में सभा होगी। बरामदे में इतने जूतों का पड़ा रहना ठीक नहीं है। रास्ते से न जाने कितनी तरह के आदमी जा आ रहे हैं। इधर से किसी ने एक जोड़े खिसका लिए तो? यहाँ किसी नौकर को बैठा रखना अच्छा होता।

शरत्चन्द्र ने कहा—ठीक कहा है, मुरारी। वहाँ फौरन एक नौकर को बैठा रखने का इन्तजाम करो।

नूट बिहारी ने चिल्लाकर कहा—शरत् दादा, आप मुझे कह रहे हैं। कितनी बार कहा कि मेरा नाम नूटबिहारी है, मुरारी नहीं। फिर भी

आप मुरारी कहते हैं। अच्छा, मुरारी, तू क्या मुरारी कहने से सचमुच ही नाराज होता है?

नाराज न होऊँ? मुरारी न होने पर भी मुरारी सुनना किसे अच्छा लगता है बताइए? क्या जानूँ, बड़े आदमी की बात है, मेरे जैसों के लिए समझना कठिन है। एक तो मेरी ऐसी सूरत है, घर में मुरारी नाम का कोई नौकर-चाकर रहा होगा, मर गया है फिर भी भूल नहीं पा रहे हैं। शायद उसी नाम का भूत अब भी आपने कंधे पर सवार है।

नहीं मुरारी, तुझे मैं छोटे भाई की तरह प्यार करता हूँ, तू इसे क्या समझेगा कि कृष्ण की तरह यह तेरा पक्का रंग है, तिस पर गोल-गोल चेहरा है, इसीलिए तुझे मुरारी कह कर पुकारता हूँ। आ, बैठ मेरे पास।

पास जाकर नूटबिहारी ने कहा सच है शरत् दादा, आपने ठीक ही तो कहा है? या और कोई कारण है?

नहीं रे, नहीं।

शरत्चन्द्र और नूटबिहारी की बातें सुनकर उपस्थित सभी लोग हँसने लगे।

नूटबिहारी ने सुझाव रखा कि शरत् दादा, सभा शुरू होने में अभी देर है। तब तक मेरा कहना है कि आप एक कहानी सुनाइए।

कौन सी कहानी सुनाऊँ, बता?

जो आपकी तबीयत हो।

तू तो आज आते ही जूता चोरी जाने के डर से घबरा उठा है। एक बार जूता खो जाने की वजह से मैं बड़ी मुसीबत में पड़ गया था।

तब मैं बाजे शिवपुर में रहता था। एक दिन मनमोहन थियेटर में सिनेमा देखने गया। मेरी किताब 'अंधेरे में रोशनी' की फिल्म दिखाई जा रही थी। सिनेमावाला आकर पकड़ ले गया।

बाक्स में बिस्तर बिछाकर बैठने का इन्तजाम किया था। पालथी मार कर मजे में बैठा था। सिनेमा खतम होने पर जब जाने के लिए उठा तो देखा कि मेरा एक पल्ला जूता नहीं मिल रहा है। सिर्फ दो दिन पहले बड़े शौक से सूंड़वाली तालतला की चप्पल खरीदी थी। और उस दिन उसी को पहन कर गया था।

जूता नहीं मिल रहा है सुनकर सिनेमावालों ने बहुतेरा ढूँढ़ा लेकिन कहीं पता नहीं चला। निराश होकर सभी कहने लगे—हैं, बात तो बड़ी वैसी है।

सिनेमावाले ने मुझसे कहा चलिए, अभी एक नई जोड़ी खरीदे देता हूँ।

मैंने कहा—तुम लोग क्यों खरीदने जाओगे; खरीदना होगा तो मैं ही खरीद लूँगा।

उन्होंने कहा—जब हमारे यहाँ खो गया है तो खरीदना हमारा ही कर्त्तव्य है।

मैंने कहा चोरी किया है चोर ने, तुम्हारा क्या कसूर। छोड़ो, अब मैं चला। और हाँ, इस पल्ले को लेता जाऊँ।

इस बात को सुनकर वे बोले—शरत् दादा, इसे लेकर क्या करोगे? एक पल्ला आपके किस काम में आएगा?

मैंने कहा तुम लोग नहीं समझते भाई। जिस चोर ने एक पल्ला चुराया है वह यहीं आस पास कहीं है। एक पल्ले से तो उसका काम नहीं चलेगा। वह आया था दोनों पल्लों को लेने, जल्दीबाजी में नहीं ले सका, एक पल्ले को ही लेकर खिसक गया। सोचता होगा कि एक पल्ला जब मिल ही गया है तो दूसरा अपने आप ही मिल जायगा। बाबू एक पल्ला पहन कर जायँगे? मैं यह नहीं होने दूँगा। चोर को एक पल्ले से

ही सबक देना होगा। दूसरा पल्ला मैं साथ ले जाऊँगा। रास्ते में गंगा में फेंकता जाऊँगा।

मेरी बात सुनकर सभी हँसे सही में मगर मैं सचमुच उस पल्ले को साथ लेता आया और रास्ते में गंगा में फेंक दिया।

चप्पल तो गंगा में गई, अगले दिन क्या हुआ जानते हो? सवेरे जरा देर से उठकर बैठक में हुक्का पी रहा था, इसी समय एक आदमी ने आकर पूछा क्या यह शरत् बाबू का मकान है?

मैंने कहा—हाँ, मेरा ही नाम शरत् है।

सुनते ही उसने नमस्कार करके एक चिट्ठी मेरे हाथों में दी। पढ़ देखा, पिछली रात के सिनेमावाले ने लिखा है—शरत् दादा, कल हमारे यहाँ आपका जूता चोरी जाने से मन बड़ा उदास हो गया। सच कहने में क्या, इसीलिए कल रात को ठीक से सो भी नहीं सका। आज सबेरे उठते ही सिनेमा हाल में अंगुल-अंगुल ढूँढ़ कर देखा। जिस बाक्स में आप बैठे थे, उसे हटाकर देखा तो एक किनारे आपकी वह खोई हुई चप्पल पड़ी हुई मिली है। आपकी चप्पल कल मेरे यहाँ चोरी नहीं गई इस बात को सोचने पर मुझे थोड़ी सी सान्त्वना मिलती है। आशा है कल लौटते वक्त आप एक पल्ला सचमुच ही गंगा में फेंकते नहीं गए। उसी भरोसे खोई हुई चप्पल का पल्ला पत्रवाहक के हाथों भेज रहा हूँ।

चिट्ठी पढ़ने के बाद उस आदमी ने मेरे सामने उस विश्वासघाती चप्पल का पल्ला रख दिया। मेरी वह बड़ी शौक से खरीदी चप्पल! देखकर मन खिन्न हो गया। न जाने कितने शौक से इसे खरीदा था। दूसरे पल्ले को तरंग में आकर गंगा में फेंका न होता तो अच्छा होता। अब देखता हूँ चोर को सबक सिखाने में मुझे ही सबक मिला।

पिशाच

उस दिन शाम को शरत्चन्द्र 'यमुना' कार्यालय में पधारे थे। सम्पादक फणी पाल, संचालक हेमेन्द्रकुमार राय तो उपस्थित थे ही, उनके अलावा सुधीरचन्द्र सरकार तथा दूसरे कितने ही लोग भी थे। शरत्चन्द्र अकेले मजलिस जमाए हुए थे।

धीरे-धीरे शाम बीती, रात हुई। कुछ लोग उठने की तैयारी कर रहे थे, इसी समय एक सज्जन ने अनुरोध किया—शरत् दादा, भूत की एक कहानी सुनाइये। इस रात को खासी जमेगी।

शरत्चन्द्र सानन्द राजी हुए। श्रोतागण कान लगा कर सँभल कर बैठे।

देखो, हमारे गाँव से गंगा काफी दूर है। पगडंडी से पांच मील तो होगी ही। इसी गंगा के किनारे चार-पाँच गावों का एकमात्र श्मशान था। निकट ही नदी के तट पर एक बीहड़ जंगल भी था। श्मशान के पास ही इस जंगल के होने से लोगों को बड़ा सुभीता होता था। लकड़ी की चिन्ता नहीं करनी पड़ती थी। जरूरत के मुताबिक लोग काट लाते थे।

देहात में किसी के मरने पर लकड़ी की चिन्ता ही बहुत बड़ी चिन्ता बन जाती है। गाँव से श्मशान तक लकड़ी ढोकर ले जाना मजाक नहीं है। शहराती श्मशानों की बात अलग है, पैसे देने से चिता के पास ही लकड़ी मिल जाती है। एक मूठ सनई जलाइये, बस पलक मारते

मेदिनी भस्म कर देनेवाली आग तैयार हो जायगी। कच्ची जंगली लकड़ी की एक और मुसीबत यह है कि आग जलाने में कलेजा मुँह को आ जाता है।

हमारे दल में एक लड़का था। नाम था भोला। जैसा निडर और साहसी था, शरीर वैसा ही मजबूत था। कुछ दिनों से भोला अड्डे में नहीं दिखाई पड़ता था। सुना उसकी नानी बहुत बीमार थी।

एक दिन रात को हम अपने-अपने घर सोने गए कि अचानक मुर्झाया चेहरा लिए भोला हाजिर हुआ। समझने में देर नहीं लगी कि उसकी नानी चल बसी है।

भोला बोला—टोले के सभी लोग कह रहे हैं कि बुढ़िया की लाश को बासी बनाने की जरूरत नहीं, आज रात को ही दाह संस्कार की व्यवस्था करनी होगी।

लोग तो कह कर किनारे हुए। अब इस रात को पाँच मील तय करके मंजिल जाने के लिए आदमी कहाँ मिलें।

दल के लोगों की शरण में आना पड़ा। घर-घर घूम कर चार को जमा किया और भोला, हम पाँचों उस गहरी रात को रवाना हुए। उजेला पक्ष होने पर भी आसमान में बादल थे, रास्ता साफ दिखाई पड़ता था। पगडंडी से गहरी रात को अँधेरे में नहीं चल रहे थे यह बहुत बड़ी बात है।

श्मशान में लोगों के आराम के लिए एक घर था। घर छोटा था और आने-जाने के लिए एक ही दरवाजा था। दरवाजा कहा सही में मगर उसमें किवाड़ नहीं थी। शायद कभी रही होगी, जरूरत पड़ने पर किसी ने उसी को चीर कर काम चलाया था। जलाने की जगह दरवाजे की ऐसी परिणति अस्वाभाविक नहीं है, यह मजे में समझ रहे होंगे।

लाश को उस घर में रख तय हुआ कि हम तीन आदमी जंगल में लकड़ी काटने जायँगे। भोला के साथ लाश का पहरा देने के लिए एक आदमी साथ रहेगा।

भोला बोला—मेरे साथ किसी के रहने की जरूरत नहीं। मैं अकेले ही रह सकूँगा। लकड़ी लाने तुम चारों ही जाओ। काम जल्दी होगा बोझ भी हलका रहेगा।

दल के एक ने कहा—लेकिन सुना है श्मशान में अकेले नहीं रहना चाहिए।

भोला बोला—रख अपना किस्सा। जा भाग, मेरे लिए मत सोच।

भोला की हिम्मत कुछ ऐसी ही थी। उसके साहस की तारीफ करते हुए हम चारों कुल्हाड़ी लिए जंगल में घुसे। बड़े-बड़े अर्जुन, शिरीष और बबूल के पेड़ों से जंगल भरा हुआ था। समय बर्बाद किए बगैर हम दनादन कुल्हाड़ी चलाने लगे।

एक आदमी को जलाने के लिए कम से कम तीन मन लकड़ी लगती है। इतनी लकड़ी चार आदमी मिलकर काटने पर भी फाड़ने में कम से कम दो घंटे तो लगे ही। दो घंटे क्यों, कुछ अधिक ही लगे।

लकड़ी लेकर हम चारों लौट रहे थे। खुली जगह में आकर चाँदनी में श्मशान के घर को देख कर हम ठमक कर खड़े हो गये। यह क्या! देखता हूँ—घर में धांय धांय आग जल रही है।

लकड़ी वकड़ी फेंक कर हम दौड़े। घर के पास आकर देखा कि रास्ते पर कोई औंधा पड़ा हुआ है।

आदमी के बदन पर हाथ रखकर देखा कि वह बेहोश है, लकड़ी हो गया है। उठाकर देखा, दूसरा कोई नहीं, हमारा भोला है। बिलकुल बेहोश है मुँह से फेन निकल रहा है।

भोला घर में से बाहर इस तरह क्यों पड़ा हुआ है और घर के अन्दर धाँय-धाँय आग क्यों जल रही है! मामला क्या है, कुछ भी समझ न पा हम भौंचक्का रह गए। कितना डर लगने लगा क्या बताऊँ।

हम घर की ओर दौड़े, जाकर देखा कि घुसा नहीं जा सकता, रास्ता बन्द है! दरवाजे के सामने मिट्टी की एक दीवार खड़ी है। दीवार गंगा की मिट्टी की है। कोई आदमी के बराबर होगी। कई अंगुल और होती तो चौखटे तक पहुँच जाती। इतनी मिट्टी आई कहाँ से और लाया कौन? ऊपर से झाँक कर देखा—एक कोने में लकड़ी का ढेर है, आग धाँय-धाँय जल रही है। पास की जिस खाट पर हम लाश लाए थे वह खाली पड़ी है। किसी तरह लुढ़क अन्दर जा कोना-कोना छान डाला। आग की रोशनी में सब कुछ साफ दिखाई पड़ा। ज्यादा देर तक देखा नहीं जा सकता था, घर में माँस जलने की गंध आ रही थी। वहाँ टिकना मुश्किल था।

नाक पर कपड़ा रख भोला के पास लौट आया। जल्दी से उसे लाद कर नदी के किनारे ले जाकर पानी के छींटे लगाए, तब कहीं उसे होश आया। कुछ स्वस्थ होकर उसने जो कहानी सुनाई इस प्रकार है—

तुम लोग तो लकड़ी लाने चले गए। मैं घर में बैठा-बैठा न जाने कब सो गया। अचानक किसी चीज की आवाज सुन मैं चौंक कर जाग पड़ा। आवाज धप्प जैसी थी, जैसे कोई भारी चीज गिरी हो। चारों ओर अच्छी तरह से देखा, कहीं कुछ या कोई नहीं दिखाई पड़ा। फिर भी सजग दृष्टि किए बैठा रहा। शायद थोड़ी सी झपकी आ गई होगी, फिर सुना धप्प।

इसके बाद थोड़ी देर तक धप्प-धप्प आवाज होने गली।

हिम्मत बटोर कर उठ खड़ा हो गया। सोचा, घूम घाम कर देखूँ

आवाज कहाँ से आ रही है। दरवाजे पर आकर देखा, यह क्या, दरवाजे पर किसने ढेर सी मिट्टी इकट्ठी कर दी है। इरादा बुरा है, इसे समझते देर नहीं लगी ! इरादा था दरवाजे को बन्द करना।

मिट्टी की ढेर लाँघ कर बाहर आया। चाँदनी छिटक रही थी। नदी के किनारे की ओर देखा एक काला लम्बा चौड़ा आदमी सिर पर लम्बे-लम्बे बाल हैं, दोनों हाथों से मिट्टी ला रहा है। लगा आदमी जरूर ही पागल होगा, नहीं तो ऐसी बेतुकी बात क्यों करने जाता। यह सोच उसके सामने जा खड़ा हुआ। गंभीर आवाजों में पूछा—यह सब क्या हो रहा है ?

उसने मेरी ओर देखा। अरे बाप रे ! कैसी आँखें थीं, कैसी दृष्टि ! आँखें नहीं दो बड़े-बड़े अँगारे थे और दृष्टि मनुष्य नहीं, पशु की भी नहीं, बल्कि उन्मत्त प्रेत की कही जा सकती है। फिर जुल्फों को फटकार कर इतने जोर से चिल्लाया कि डर के मारे मेरे कलेजे का खून जम गया। चिल्लाते समय मैंने उसके दाँतों को देखा था, ठीक भेड़िए जैसे वे दाँत थे। मैं जान बचाने के लिए वहाँ से सिर पर पैर रख कर भागा। कुछ दूर जाते न जाते अचानक ठोकर खाकर गिर प ा। इसके बाद कुछ नहीं जानता।

इस विवरण को सुनकर हमें तनिक भी संदेह नहीं रहा कि भोला पिशाच के चंगुल में जा फँसा था। तकदीर के बल से बच गया। सुना है बदमाश प्रेतात्माओं को मुक्ति नहीं मिलती, उनकी शैतानी लगातार भयंकर होती जाती है। वाजिब मौका पाते ही वे मृतदेह में प्रवेश कर मनुष्य का रूप धारण कर सुनसान श्मशान में रहते हैं। और वे अशाकाहारी होते हैं। यानी शव ही उनका प्रधान भोजन होता

हैं। कहते हैं, खाते वक्त झुलस देने की ही रीति है। भोला की नानी की लाश के अन्तर्धान होने का रहस्य अब हमारी समझ में आया।

उस दिन की इस भयंकर परिणति की बात मैं जिन्दगी भर नहीं भूलूँगा।

कहानी समाप्त कर शरत्चन्द्र ने सिगार सुलगाया। श्रोतागण चुप बैठे रहे, कोई उठने का नाम नहीं लेता था।

शरत्चन्द्र बोले—चलो अब चला जाय। रात तो बहुत हो गई।

श्रोताओं में से एक ने कहा—लेकिन शरत् दादा, ऐसी कहानी सुनाई कि अब रास्ते पर निकलने में डर लग रहा है। मान लीजिए, अगर किसी पिशाच से मुलाकात हो जाय!

शरत्चन्द्र ने हँस कर कहा—भाग पागल कहीं का, शहरों में ऐसा नहीं हुआ करता। चलो, घर चलें।

———

कामिनी

कलकत्ते में पहले 'कर मजुमदार कम्पनी' नामक एक प्रकाशक और पुस्तक विक्रेता थे। एक बार इस कम्पनी ने दीनबन्धु मित्र महाशय के ऐतिहासिक नाटक, 'नल दमयन्ती' का राज संस्करण प्रकाशित करने का विचार किया। उनकी इच्छा थी कि शरत्चन्द्र इस संस्करण के लिए एक भूमिका लिख दें।

इस सिलसिले में सावित्रीप्रसन्न चट्टोपाध्याय, अध्यापक नरेन्द्र-कुमार मजुमदार, शरत्चन्द्र के बचपन के मित्र विभूतिभूषण भट्ट और अतुलकृष्ण दत्त एक दिन उनके शिवपुरवाले मकान पर जा पहुँचे। शरत् बाबू उस समय घर पर नहीं थे, मुहल्ले में मरीज देखने निकल गए थे। थोड़ी देर के बाद होमियोपैथी की दवाओं का बक्स लिए वह लौटे।

सावित्री बाबू से तब तक शरत्चन्द्र का परिचय नहीं था, विभूति बाबू ने परिचय करा दिया।

शरत्चन्द्र ने विभूति बाबू की बात काटते हुए कहा—'हाँ' आपकी रचनाएँ मैंने पढ़ी हैं। आप उपासना पत्रिका के कर्त्ता-धर्ताओं में से हैं, बात सही है न ?

सावित्री बाबू ने स्वीकार किया कि वह 'उपासना' के सहकारी सम्पादक हैं।

शरत् बाबू बोले "तुम्हारे सम्पादक राधाकमल मुखर्जी ने अपनी पत्रिका में मेरे 'चरित्रहीन' के बारे में कैसी अंट-संट आलोचना शुरू की है बताओ तो ! सुनूँ, राधाकमल बाबू 'उपासना' के सम्पादन के अलावा और भी कुछ करते हैं क्या ?"

सावित्री बाबू ने उत्तर दिया कि राधाकमल बाबू कालिज के अध्यापक हैं।

शरत् बाबू बोले—'अध्यापक' ! उम्र कितनी है ? निश्चय ही मुझसे ज्यादा नहीं। होने दो, लेकिन नारी के चरित्र के सम्बन्ध में उन्हें कितना अनुभव है, सुनूँ ? मुझसे बहुत ही कम, इस बात को मैं दावे के साथ कह सकता हूँ। जब रंगून में रहता था, मुहल्ले की बहुत-सी स्त्रियों की रामकहानी मैंने जमा की थी। तभी जान पाया था कि इनका जीवन कितना विचित्र और आश्चर्यजनक होता है। कामिनी नाम की एक स्त्री को मैं जानता था उसकी कहानी अगर सुनोगे तो तुम जरूर ही दंग रह जाओगे।

कांचरापाड़ा के रेल कारखाने में शीतलचंद नाम का एक आदमी लोहार का काम करता था। अचानक रंगून में एक अच्छा-सा काम पा वह रंगून चला आया। आते वक्त शीतलचन्द अकेला नहीं आया, कामिनी नाम की एक बहू को भी वह फुसलाकर साथ ले आया। कामिनी की उम्र उस समय शायद चौबीस से ज्यादा नहीं होगी। लेकिन उसका स्वास्थ्य इतना अच्छा था कि देखने पर लगता कि प्रथम यौवन के सारे ज्वार को मानों उसने अपने शरीर में बाँध रखा है।'

शीतलचंद और कामिनी ने मेरे मेस के पास ही एक बस्ती में डेरा डाला।

रंगून के छोटे-बड़े बहुतेरे बंगालियों से मेरा विशेष परिचय था ?

केवल परदेश में बंगाली होने के कारण ही नहीं बल्कि होम्योपैथी इलाज करने की वजह से बहुतेरे लोग मुझे जानते थे। तुम लोग जिनको छोटे आदमी कहते हो उनमें अच्छे डाक्टर के रूप में मेरी शोहरत भी थी।

"कुछ ही दिनों के अन्दर शीतलचन्द और कामिनी से मेरा परिचय हो गया। उनका डेरा मेरे दफ्तर जाने के रास्ते में पड़ता था। मैं देखता कि वे राजी-खुशी गृहस्थी चला रहे हैं। यह भी सुना था कि कामिनी के प्रभाव से घोर शराबी शीतलचन्द ने शराब छोड़ दी है। एक दिन दफ्तर से वापसी देखा कि किसी की एकटक राह निहारती कामिनी किवाड़ का पल्ला पकड़े खड़ी है। पास पहुँचते ही उसने रोते हुए मुझसे कहा—दादाजी, मेरी तकदीर फूट गई। उन पर आज चार दिनों से शीतला माई की कृपा हुई है। सोचा था कि यों ही ठीक हो जायँगे। आपको इस रोग में नहीं खीचूँगी। लेकिन कल रात से जोरों का बुखार है। सारे बदन में इतनी निकली हैं कि पहचाना तक नहीं जाता। दर्द से छटपटा रहे हैं। मुझसे तो अब देखा नहीं जाता। आप कृपा करके थोड़ी-सी दवा देंगे, दादाजी! इतना कहकर कामिनी मेरे पैरों को पकड़ने के लिए आगे बढ़ी।"

मैं जरा दूर हटकर बोला तुम घर जाओ कामिनी। 'मैं मेस जाकर अभी आता हूँ।' लौटकर शीतलचन्द की जो हालत देखी उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। कुछ दिनों की बीमारी से ही आदमी का चेहरा इतना वीभत्स हो सकता है, इसकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था। सचमुच ही उसे अब पहचाना नहीं जा सकता था। दर्द से वह करवटें बदलता कराह रहा था। आँखों से दीखना बन्द हो गया था। उसके विकृत मुँह के पास अपना मुँह ले जाकर कामिनी ने कहा— 'अजी,

सुनते हो—दादाजी आए हैं, अब किसी बात का डर नहीं। उनकी एक बूँद दवा खाते ही तुम्हारा सारा दर्द दूर हो जाएगा।'

कामिनी ने तो मेरी दवा की खूब तारीफ की लेकिन मैं अपनी दौड़ जानता था। अपने पर उतना भरोसा तो नहीं हुआ फिर भी अपनी जानकारी के हिसाब से उसे दवा दी। शाम सबेरे रोज उसे देखने जाता। बाद में एक बड़े डाक्टर भी बुलाए गए। लेकिन शीतलचन्द को बचाया नहीं जा सका।

शीतलचन्द मर गया। कामिनी बुरी तरह रोई-धोई। शोक से मानो वह पागल-सी हो गई। शीतल की बीमारी के वक्त भी देखा था आहार-निद्रा छोड़कर दिन-रात उसने उसकी कैसी सेवा की थी। किसी सती-साध्वी से किसी भी तरह कम नहीं थी उसकी सेवा।

शीतलचन्द की मृत्यु के अगले दिन दफ्तर जा रहा था कि देखा कामिनी के घर में ताला लटक रहा है। सुना कि उसने घर छोड़ दिया। कहाँ गई, कोई नहीं जानता।

दो साल बाद पुराने मेस को छोड़ दफ्तर के पास ही अपने एक मित्र के मेस में जा डटा। जिस दिन गया, उसी दिन एक घटना हुई। मेस में डेरा डाल शाम को टहलने निकला। जेब में सिगार था मगर दियासलाई नहीं थी। सड़क पर एक परचून की दुकान देखकर दियासलाई लेने के लिए पहुँचा। घुसते ही देखा कि शीतलचन्द की वह कामिनी ग्राहकों को तौलकर सौदे दे रही है। बदन पर गहने लदे हैं, वही पुरानी हँसी, वही पुराना अटूट स्वास्थ्य!

मुझे देखते ही कामिनी ने सिर के कपड़े को जरा और खींच लिया और उठकर खड़ी हो गई। इसके बाद धीमे से आकर मेरे चरणों में प्रणाम किया और मुस्कराते हुए पूछा—'दादाजी, मजे में हैं न?'

मैंने कहा—'तुम्हारा समाचार क्या है, कामिनी? बताओ, तुम कैसी हो? देखकर तो लगता है मजे में हो। बात सही है न?'

कामिनी बोली—'आपके आशीर्वाद से अच्छी ही हूँ, दादाजी।' फिर जरा रुककर शायद पुरानी स्मृति के कारण कुछ लजाकर कहने लगी—'यम के बुलावे को कौन टाल सकता है, दादाजी। आपने भी तो कुछ कम इलाज नहीं किया।' कामिनी ने आँचल से आँखें पोंछीं।

"थोड़ी देर बाद शान्त होकर बोली—'ये उन्हीं के ममेरे भाई हैं।' बहुत दिनों से रंगून में ही हैं। गाढ़े में ये ही टोह लिया करते थे। आपने शायद देखा होगा दादाजी, उनकी बीमारी के वक्त अक्सर आते थे। इन्हीं की कृपा से अब दोनों वेला दो मुट्ठी खाने को मिल जाता है। इनके दो छोटे-छोटे बच्चे हैं, बेचारों की माँ मर गई है। ओफ! बच्चों का मुँह देखकर ही तो मुझे गृहस्थी बसानी पड़ी, नहीं तो अकेले पेट को कोई काम-धाम करके पाल ही लेती। लेकिन आदमी बड़ा भला है, दादाजी। बिलकुल उन्हीं की तरह। बहुत आदर करता है, बड़ा प्यार करता है।"

जो मोटी बात मेरी समझ में आई वह यह कि कामिनी फिर इस आदमी से प्यार करने लगी है इसके साथ गृहस्थी बसा ली है और बड़े मजे में है। शीतलचन्द की बीमारी के वक्त एक आदमी अक्सर आता जाता था। इस बात को मैंने देखा था। पूछा—'क्यों री, कामिनी, तो क्या वही निवारण है यह। उसका नाम निवारण ही तो था, यही न?'

कामिनी हँस पड़ी। सिर के कपड़े को जरा खींचकर बोली—'हाँ, दादाजी आपको तो सब कुछ मालूम है।'

शीतलचन्द की गृहस्थी में कामिनी को देखा। वहाँ वह कितने

सुख से रह रही थी। उसके बाद जब शीतलचन्द को चेचक निकली, उसकी बगल में कामिनी को देखा। बिना खाए, सोए चिन्ता से वह सूखकर जली लकड़ी जैसी काली हो गई थी। फिर उस कामिनी को निवारण के घर में भी देखा। कामिनी अब जली लकड़ी जैसी काली नहीं थी, उसके सारे अंगों में वसंत की हवा लगी हुई थी, उसके मुँह और आँखों में वही असाधारण लावण्य दिखाई पड़ता था।

और काँचरापाड़ा के जिस पति को वह छोड़ आई थी, उससे भी क्या कामिनी कुछ कम प्यार करती रही होगी!

क्रान्तिकारियों के हमदर्द

ब्रिटिश सरकार ने आर्डिनेन्स जारी करके बंगाल के क्रान्तिकारियों को बड़े पैमाने पर गिरफ्तार करना शुरू कर दिया था। क्रान्तिकारी छिपें फिर रहे थे। आन्दोलन पूरे जोर-शोर से बढ़ता जा रहा था।

उन्हीं दिनों बंगवाणी में शरतचन्द्र का 'पथेर दाबी' (पथ के दावेदार) धारावाहिक प्रकाशित हो रहा था। तब शरतचन्द्र हावड़ा जिला कांग्रेस कमेटी के सभापति थे।

कई कांग्रेसी शरतचन्द्र से अचानक पूछ बैटे—अहिंसक सत्याग्रह और हिंसात्मक विप्लव इन दोनों में आप किसके समर्थक हैं? आप हावड़ा कांग्रेस के सभापति हैं और कांग्रेस हाई कमाण्ड का आपके प्रति स्थायी निर्देश है अहिंसात्मक सत्याग्रह का मगर आपके 'पथ के दावेदार' उपन्यास में हिंसा का संकेत है।

उत्तर में शरतचन्द्र ने कहा—मैं उनका समर्थन नहीं करता यह सच है; फिर भी न जाने क्यों इन क्रान्तिकारियों के प्रति मेरे अन्दर एक कमजोरी रह गयी है। इसीलिये खतरा उठाकर भी इनसे सम्पर्क रखने और कभी-कभी यथासंभव आर्थिक मदद करने में मैं तनिक भी आगा पीछा नहीं करता। तुम लोगों में शायद कोई भी नहीं जानता कि इनमें से दो-एक गहरी रात के अन्धेरे में मेरे पास आया करते हैं। काम खतम कर के वे फिर छिपकर रूपनारायण के रास्ते लौट जाते हैं। अभी उस दिन दिन-

दहाड़े सब की आँखों में धूल झोंककर एक क्रान्तिकारी मेरे घर पर कुछ घण्टे काट गया। मेरे यहाँ से दो मील पर एक गाँव के एक खाते-पीते किसान के यहाँ क्रान्तिकारी छिपा हुआ था। किसान से वह सोलहों आने अपरिचित था। उसके यहाँ वह मजूरी करता और रहता था और एक मामूली तनखाह भी पाता था।

उस दिन सबेरे क्रान्तिकारी के एक आदमी ने आकर मुझे खबर दी कि ठीक दोपहर के समय आलू का टोकरा लिये 'आलू ले लो, आलू!' चिल्लाता हुआ क्रान्तिकारी घर के पास से गुजरेगा। उसकी आवाज सुनकर आलू लेने के बहाने मैं उसे घर के अन्दर बुला लूँ। घर आकर वह अपनी बात खुद कहेगा। दोपहर को कान लगाये बैठा रहा। थोड़ी ही देर के बाद सचमुच ही 'आलू ले लो! आलू' चिल्लाता हुआ आदमी इसी तरफ आने लगा।

आवाज तो सुनी मगर अचानक उसे बुलाऊँ कैसे। यहाँ आने के बाद से कभी खुद कोई चीज नहीं खरीदी थी। नौकरानी पर ही खरीद-फरोख्त की जिम्मेदारी थी। इसके अलावा चूल्हे चौके की खबर नहीं रखता था। जो पा जाता खा लेता था, बस। आज अगर अचानक आलू-वाले को बुलाने की बात लोगों को खटक जायेगी तो हो सकता है कि उसकी गोपनता ही प्रकट हो जाये। बहुत सोच विचारकर आखिर माल-किन की शरण ली। बुलाकर कहा—बड़ी बहू कोई आलू-आलू पुकार रहा है, आलू लोगी क्या?

मालकिन बोली—इस वक्त आलू लेकर क्या होगा? घर में ही ढेर-सा है। आज ही तो इतना बाजार से आया है।

मैं बड़ी आतुरता से बोला—तो क्या बेचारा इस चिलचिलाती धूप में आलू-आलू चिल्लाता खाली हाथों लौट जायेगा? शायद अभी तक

उसकी बोहनी भी नहीं हुई। थोड़ा बहुत ले लो! आलू ऐसी कोई खराब होनेवाली चीज नहीं है घर में पड़ा रहने पर भी कोई नुकसान नहीं होगा। अहा, इस भरी दोपहरी में बेचारा चिल्लाता जा रहा है, मुझे सचमुच ही बड़ी दया आ रही है!

'तुम्हारी सनक बड़ी विचित्र है'—कहकर मालकिन ने आलूवाले को बुलाने के लिये ननी को आदेश दिया।

आलूवाले के घर में आने पर मालकिन ने थोड़े-से आलू लिये। मैं दरवाजे के पास ही खड़ा था। क्या कहूँ! अन्त में बोला—आलूवाले दोपहर तो ढल गया, कुछ खाया-पिया भी है?

आलूवाला बोला—नहीं बाबूजी, कैसे खाता-पीता। आलू बेचकर कब घर लौटूँगा इसका कोई ठिकाना नहीं है। शायद शाम तक कुछ मिल जायेगा।

मैं बोला—तो भाई एक काम करो, यहीं दो कौर खा क्यों नहीं लेते। इस भरी दोपहरी में ब्राह्मण के दरवाजे से बिना खाये तुम नहीं जा सकते।

आलूवाला बोला—बाबूजी ब्राह्मण के यहाँ बहुत दिनों से प्रसाद नहीं पाया, मिले तो मेरा परम भाग्य होगा।

इधर मालकिन कान में बुदबुदाने लगीं,—तुम खाहमखाह झंझट मोल ले रहे हो। आया है आलू बेचने, उसे खिलाने की कौन जरूरत पड़ गयी! वह क्या अतिथि है या कोई भिखारी कि इसे बुलाकर खिलाना होगा! इसके अलावा चूल्हा चौका भी तो उठ चुका है, मछली-बछली भी नहीं रह गयी है।

मालकिन की इज्जत बचाते हुए धीरे से बोला—जानती हो, इस भरी दोपहरी में घर से अगर कोई बिना खाये लौट जाये तो गृहस्थ का

अकल्याण होता है और मछली की बात कह रही हो सो ननी को कहने से वह अभी जाल फेंककर तालाब से मछलियाँ मार लायेगा।

अकल्याण की बात सुनकर ही मालकिन आलूवाले को खिलाने पर राजी हो गई है।

इतनी गोपनता का एक कारण भी था। पहली बात है घर के नौकर चाकर और औरतों को उसके असाधारण परिचय का यदि पता चल जाता तो बात धीरे-धीरे फूट जाती। दूसरी बात है कि हमारे मकान के सामने ही चौकीदार का घर था। पता लगने पर वह थाने में कहीं रिपोर्ट न लिखा आये, इसीलिये इतनी सावधानी अपनाने को बाध्य हुआ था।

अन्त में शरत्चन्द्र ने कहा कि देश के लिये जो लोग काम कर रहे हैं, उन सब पर मैं श्रद्धा करता हूँ। भले वे हिंसात्मक क्रान्तिकारी हों या अहिंसात्मक सत्याग्रही। मेरे लिये वे दोनों समान श्रद्धा के पात्र हैं।

इस असमय में उनसे रसोई करवाने में मुझे कुछ संकोच हो रहा था। इधर कोई चारा भी नहीं था। आलूवाला कुछ और पहले आया होता तो दुबारा चूल्हा जलाने की जरूरत न पड़ती।

जो भी हो, ननी जाल लेकर तालाब की ओर चला गया और बहू भी अतिथि सत्कार के लिये रसोई घर में घुसी। इसी मौके से फायदा उठाकर मैंने भी आलूवाले से उसकी सारी बातें सुन लीं। उसे कुछ रुपये दिये, हमारी बातें कोई नहीं जान सका। सबको सुनाकर ऊँची आवाज में जो थोड़ी-सी बातें कही थीं, उन्हीं को किसी-किसी ने सुना होगा।

खा-पीकर थोड़ी देर आराम कर के आलूवाला 'आलू लो, आलू!' चिल्लाता हुआ चला गया।

—:※:—

चन्द्रमुखी का उपादान

किसी पत्रिका में शरत्‌चन्द्र पर आक्रमण करते हुए लेख छपा था। शरत्‌बाबू उस दिन मित्र मंडली में उसी की चर्चा कर रहे थेः—

मेरे खिलाफ इनका सबसे बड़ा अभियोग यह है कि मैंने पापी के चित्र को इतना मनोहर क्यों बनाया। उनकी धारणा है कि मैं पतिताओं का समर्थन करता हूँ। मगर सच बात यह है कि समर्थन मैं तनिक भ नहीं करता। मैं केवल उनका अपमान भर नहीं करना चाहता। कहता हूँ, वे भी तो मनुष्य हैं। उन्हें भी तो शिकायत करने का अधिकार है। इसके अलावा पूर्ण मनुष्यत्व तो सतीत्व से भी कहीं बड़ी चीज है। अत्यन्त सती नारी को भी चोरी जालसाजी करते, झूठी गवाही देते मैंने देखा है और इसकी उलटी बात भी मैंने देखी है। तुम लोगों को एक कहानी सुनाता हूँ। आँखों देखी तो नहीं है, फिर भी घटना सच्ची है। इस घटना से जिन दो पुरुषों का सम्बन्ध है, वे मेरे परिचित हैं। उन्होंने मुझे सारी बातें खोलकर बतायी थीं।

जिनकी बात कह रहा हूँ वे एक दूसरे के गहरे दोस्त थे जिसे कहते हैं दांत काटी रोटी। तफरीह के लिए दोनों दोस्त एक दिन एक चकले में जा पहुँचे। यूँ मजा नहीं आयेगा सोचकर वे साथ में कुछ शराब भी लेते गये थे।

जिसके यहाँ गये थे, वह लड़की अच्छा नाचना-गाना जानती थी। नाच-गाना चलने लगा। दोनों दोस्त धीरे-धीरे शराब की मात्रा बढ़ाते गये।

थोड़ी देर के बाद उन्हें खूब नशा चढ़ गया। कौन किस तरफ लुढ़का इसका कोई ठौर-ठिकाना नहीं रहा। कुर्ता कहीं है, धोती कहीं। फिर जो होना चाहिये वही हुआ। वे बिल्कुल बेहोश हो गये।

अगले दिन सुबह नशा उतरने पर वे बिल्कुल स्वाभाविक आदमी बन गये। एक सगबगाया और कमर पर हाथ रखते ही चिल्ला उठा। हाय! हाय! यह क्या हुआ? मेरा सत्यानाश हो गया!

चिल्ल-पों सुनकर दूसरे दोस्त की भी नींद टूटी। आँखें मलते हुए पूछा—क्या हुआ, इस तरह चिल्ला क्यों रहे हो?

मेरे टेंट में ३००० का जो पुलिन्दा था, वह नहीं मिल रहा है, तूने छिपाकर तो नहीं रखा है?

वाह मैं क्यों छिपाने जाऊँगा? कल रात से ही तो मैं बेहोश हूँ। अभी तेरा शोर सुनकर उठा हूँ।

अब बना! मेरा सत्यानाश हो गया! यह तो महाजन का रुपया था। उसका रुपया न मिला तो नौकरी से हाथ तो धोना पड़ेगा और उसके साथ ही जेल की हवा खानी पड़ेगी। हाथ में पैसे भी नहीं हैं कि किसी तरह चुका दूँगा। दस पाँच की तो बात नहीं है। तीन हजार रुपये का मामला है। इतने रुपये इस वक्त मुझे कौन देगा। हाय! हाय! अब मैं क्या करूँ कहकर वह फूट फूटकर रोने लगा।

रोने से अब रुपया थोड़े ही लौटनेवाला था। दोस्त की सलाह से घर का अंगुल-अंगुल छान डाला गया लेकिन कुछ भी न मिला। फिर इस हालत में जो स्वाभाविक है वही हुआ। दोनों दोस्तों को लड़की की बात याद आयी। कल रात की वह लड़की कहाँ गयी? वह भी तो नहीं दिखायी पड़ रही है। रात जब हम नशे में बेहोश थे तो उसी ने

तो रुपये नहीं खिसकाये ! लगता है कि उसी ने लिया है नहीं तो इस घर से रुपया कहाँ जायेगा ?

इसी समय जिसके बारे में बातचीत हो रही थी वह घर में घुसी। जिसका रुपया गया था, वह उसे देखकर रोने-चिल्लाने लगा तथा महाजन की नौकरी से हाथ धोने तथा जेल की हवा खाने की आशंका की बात उसने विस्तारपूर्वक कह सुनाई। सब कुछ सुन लेने के बाद लड़की ने शान्त स्वर में कहा—नशे में लुढ़कते-लुढ़कते आप लोग फर्श पर बिछे इस गद्दे से नीचे चले गये थे। वहाँ से उठाकर आप लोगों के सिरहाने तकिया रखने गयी। आप लोगों ने मुझे जो जह-वह कहा उसे मैं गिनाना नहीं चाहता। यह तो हमारे लिये रोजमर्रा की बात है। इन्हें बरदाश्त कर जाने की हमारी आदत पड़ गयी है। छोड़िये इन बातों को। किसी तरह आप लोगो को सुलाकर उठ रही थी, तो देखा कि फर्श पर रुपये की थैली पड़ी हुई है। उठाकर देखा हजारों रुपये हैं। सारी रात जागकर उन्हीं की रखवाली करती रही।

यह मुहल्ला बहुत बदनाम है। इस बात को आप लोग जरूर जानते होंगे। न जाने कितनी तरह के लोग आते-जाते हैं। गुण्डे तो घर-घर घूमते फिरते हैं। मुझे लगता है कि आप लोगों के पास रुपया है, इसका सन्देह करके कुछ गुण्डे आप लोगों का पीछा कर रहे थे। मेरी पहचान के कई गुण्डे इस घर के सामने से कई बार आये गये, पर उन्हें घुसने की हिम्मत नहीं हुई। शायद सोचा होगा कि यहाँ से निकलते ही रुपये छीन लेंगे। थोड़े से रुपयों के लिये वे अक्सर खून कर बैठते हैं।

इधर मेरी हालत सोचिये ! मेरे पास आपके रुपये हैं और बाहर गुण्डे चक्कर लगा रहे हैं। मैं तो बहुत डर गयी थी। घर में आग

जलाकर नौकरानी को लिये सारी रात जागती रही। सबेरा होने पर अभी-अभी निकली हूँ। यह कहकर उसने अपने टेट से नोटों का पुलिन्दा निकालकर सामने रख दिया।

कहानी खत्म करके शरत् बाबू बोले—तुम लोग जरा सोचो इस लड़की की महानता को, जो चन्द रुपयों के लिये अपने को सौदा बना देती है और वही तीन हजार रुपये के लोभ से अपने को इतनी आसानी से संभाल लेती है। यह क्या कोई मामूली बात है! लेकिन देखो, अगर नट जाती तो कोई उससे रुपये वसूल नहीं कर सकता था। इसलिये कह रहा था, बाहर का चेहरा ही उनका वास्तविक परिचय नहीं है। ये भी आदमी हैं और इनके भी दिल है। इनके हृदय की सत्-प्रवृतियाँ अभी मरी नहीं हैं। वे इस पथ पर आने को क्यों बाध्य हुईं इसका उत्तर समाज ही दे सकता है, क्योंकि वही जिम्मेदार है। हृदय की दृष्टि से ये हमारे समाज की सती-साध्वी स्त्रियों से किसी भी दृष्टि में घटकर नहीं हैं।

इस औरत की कहानी सुनने के बाद ही मेरी आँखें खुल गयीं और मैं चन्द्रमुखी का चरित्र चित्रित कर सका। उसका श्रेय इसी लड़की को है। उसी ने चन्द्रमुखी का उपादान जुटाया।

———

संकीर्तन दल

१९२३ यां २४ की बात है। दशहरे की छुट्टियों के कई दिन पहले एक दिन सबेरे कलकत्ते के प्रेसिडेन्सी कालिज के कुछ विद्यार्थी शरत्चन्द्र के शिवपुरवाले मकान पर पहुँचे। उनका अनुरोध था कि कालेज की इस बार की साहित्य-सभा के सभापति शरत्चन्द्र ही बनें।

शरत्चन्द्र बरामदे में आराम-कुर्सी पर लेटे हुए थे। बदन पर कपड़े नहीं थे, जनेऊ गले से माला की तरह लटक रहा था, मुँह के पास धूमायमान गड़गड़े की नली थी।

सभापति बनने का प्रस्ताव सुनते ही शरत्चन्द्र ने दबी जबान से प्रतिवाद किया—नहीं, नहीं, यह कदापि नहीं हो सकता, एक तो बंगाल में मेरी कोई प्रतिष्ठा नहीं है, तिस पर साहित्य सभा का सभापतित्व करना और भाषण देना मुझे नहीं आता। अच्छा हो कि आप हमारे जलधर सेन महाशय को सभापति बनायें। वे राय बहादुर हैं, साहित्यिक हैं और 'भारतवर्ष' के सम्पादक भी हैं, उन्हीं को सभापति बनाना फबता है।

लड़के किसी तरह छोड़ने को तैयार नही हैं देखकर शरत्चन्द्र ने एक दूसरा प्रसंग छेड़ा। पूछा—अच्छा यह तो बताओ कि तुम लोग मेरी किताबें पढ़ते हो या नहीं ?

सभी बोल उठे—अवश्य। आज-कल आपकी किताबें कौन नहीं पढ़ता बताइये ?

एक ने कहा—आपकी किसी भी किताब का कोई भी पन्ना जबानी

सुना सकता हूँ। इतनी बार पढ़ा है कि एक तरह से कण्ठस्थ हो गयीं हैं।

शरत्चन्द्र ने कहा—देखो विद्यार्थियों से मेरा परिचय बहुत ही कम है। तुम लोग मेरी किताबें इस तरह से पढ़ते हो यह तो नहीं जानता था। मेरे यहाँ जो लोग आते हैं, करीब सभी प्रवीण होते हैं। बीच-बीच में नाना प्रकार के उपदेश दे जाया करते हैं, तिरस्कार ही अधिक करते हैं। वे कहते हैं, मैंने साहित्य को बहुत नुकसान पहुँचाया है। कहते हैं कि मेरी रचनाएं शुरू से आखिर तक दुर्नीति से भरी हैं। यह तो वे मेरे घर में आकर सुना जाते हैं। उस दिन एक दल ने क्या किया जानते हो? सभापति बनाकर सभा में मुझे खाहमखाह अपमानित किया।

चितपुर में एक लाइब्रेरी है। उसीके स्थापना-दिवस के उत्सव में सभापतित्व करने के लिये कुछ सज्जन तुम लोगों की तरह ही अनुरोध करने आये। मैं जाने के लिये किसी तरह तैयार नहीं था, वे भी मुझे छुटकारा देने के लिये तैयार नहीं थे।

अन्त में मुझे हार माननी पड़ी। उनके साथ चला गया। जाकर देखा सभा बहुत बड़ी है, बहुतेरे लोग आये हैं। ठीक समय पर सभा का काम शुरू हुआ। पहले दो एक लोग बड़े मजे में भाषण दे गये। इसके बाद जो बोलने उठे उन्होंने शुरू किया—हम लोगों ने बड़े उत्साह से पुस्तकालय बनाने की ओर ध्यान दिया है। लेकिन कभी-कभी सोचते हैं कि पुस्तकालय बनाने से क्या फायदा? क्या पढ़नेके लायक आज-कल अच्छी किताबें निकल रही हैं? कोई लिख रहा है? साहित्य में आज न तो नीति है और न रुचि, सब कुछ गन्दगी से भरा हुआ है। और इस गन्दगी के लिये खास तौर से जिम्मेदार हैं, हमारे आज के सभापति महोदय जी—कह कर उन्होंने उँगली से मेरी ओर इशारा किया।

देखो तो इनका सलूक कैसा हुआ। सभी सज्जन व्यक्ति थे, तुम्हीं बताओ मैं क्या करता? इसके अलावा भीड़ भी काफी थी, इतने लोगों के बीच कोई कड़ी बात कहकर हंगामा खड़ा करूँ। इसलिये चुपचाप सब सह लिया। केवल इतना ही कहा देखिये, अच्छी किताबें जब नहीं निकल रही हैं, तो आप लोग एक काम कीजिये। लाइब्रेरी बन्द कर दीजिये। लाइब्रेरी न बनाकर बल्कि एक संकीर्तन दल बनाइये। लाइब्रेरी बनाकर देश के लोगों में गन्दगी न फैलाकर हरिकीर्तन दल बनाकर मुहल्ले-मुहल्ले में कीर्तन का प्रचार कीजिये—यह सच्चा सत्कर्म होगा।

लड़के इस कहानी को सुनकर बड़े जोर से हँस पड़े।

शरत्चन्द्र ने कहा—इनकी शिकायत है कि 'पल्लीसमाज' की नायिका रमा विधवा होकर भी अपने बचपन के साथी रमेश से क्यों प्यार कर बैठी? अरे, कौन किसको किस लिये प्यार करता है, इसका भी कहीं कोई उत्तर होता है? बाहर से हम तुम आँखें नीली पीली करके उसका क्या कर सकते हैं? इस खोखली नीति-अनीति की रट लगाकर ये देश का दिमाग चाट रहे हैं। रमा-रमेश की तरह लड़के-लड़कियाँ झुण्ड के झुण्ड हमारे देश में पैदा नहीं होते, हिन्दुस्तान में अगर इनके मिलन के लिये कोई रास्ता होता तो हालत कैसी हो सकती थी, इस बात को क्या वे समझते हैं?

प्रेसीडेन्सी कालेज के विद्यार्थियों को शरत्चन्द्र ने यह कहानी सुनायी तो सही में लेकिन आखिरकार उन्हें उनकी सभा का सभापतित्व करना ही पड़ा था। कहने की आवश्यकता नहीं कि वहाँ पूर्वोक्त घटना की पुनरावृत्ति नहीं हुई।

पाँचू की माँ

रसचक्र की बैठक में शरत्चन्द्र अक्सर अपने जीवन के विचित्र अनुभवों की कहानियाँ सुनाया करते थे। सदस्यगण मन्त्र-मुग्ध की तरह सुनते थे। एक दिन उन्होंने नीचे लिखी कहानी सुनाई—

रंगून से लौटकर मैंने उन दिनों शिवपुर में डेरा डाला था। एक दो साल बीत गए थे। एक दिन रवीन्द्रनाथ का आदेश पाकर उनसे मिलने के लिए जोड़ासाँको के मकान पर गया। बहुत देर तक बात-चीत के उपरान्त प्रणाम करके घर लौटने को उठा। ठीक उसी समय ठाकुर कोठी के ही किसी ने—नाम अब याद नहीं, लेकिन कोई गण्यमान्य होंगे, इसमें सन्देह नहीं—आकर उस कमरे में दाखिल हुए। कवि ने उनसे कहा—जाओ, शरत् को सड़क तक पहुँचा आओ।

कवि के पास बहुत देर तक बैठना पड़ा था। चितपुर रोड पर आकर इसीलिए फौरन बस या ट्राम पर चढ़ने से कोई फायदा नहीं था, बल्कि थोड़ी दूर तक पैदल चलकर हाथ पैर की अकड़ दूर कर लूँ।

जो सज्जन मुझे पहुँचाने आए थे, मेरे पैदल चलने की बात सुनकर बोले—तो चलिए आपको थोड़ी दूर पहुँचा दूँ।

बात-चीत करते हुए हम कितनी दूर निकल आए इसका कोई खयाल नहीं रहा। अचानक देखा एक जाने ही पहचाने मुहल्ले के पास से जारहा हूँ एक नारी कंठ की आवाज कानों में पहुँची। कोई मुझेपुकार रहा है।

दादा जी, दादा जी। मैंने देखा कि एक अधेड़ औरत मेरी ओर दौड़ी आ रही है। पास आने पर देखा पाँचू की माँ है।

पहुँचते मुझे प्रणाम करके पाँचू की माँ कहने लगी, आज मेरा बड़ा सौभाग्य है कि दादा जी का दर्शन हो गया। आप बड़े वैसे हैं दादा जी, हम लोगो को बिलकुल ही बिसार दिया है। बताओ तो कितने दिनों से इधर नहीं आए। आज मैं नहीं जाने दूँगी। मेरे घर में चरणधूलि देनी होगी।

समझ गया कि पाँचू की माँ से छुटकारा नहीं मिलने का। बोला—अच्छा तुम जाओ मैं अभी आया।

ठाकुर कोठी के संगी अभी साथ ही थे। हमारा आचरण और वार्तालाप देख-सुनकर वे अवाक् रह गए। पाँचू की माँ के चले जाने के बाद बोले, शरत् बाबू, यह क्या आपकी परिचिता है? इन मुहल्लों में आप आते जाते हैं क्या?

मैंने कहा—बताइये, क्या करूँ, इनसे मिले जुले बगैर हमारा काम नहीं चलता। इनकी बात तो छोड़िए उसे फिर किसी दिन कहूँगा। बल्कि आप आज जाइए। पकड़ा जब गया ही हूँ तो छुटकारा नहीं मिलने का। शायद इस जून बिना खिलाए मानेगी भी नहीं।

आप इनके यहाँ खायेंगे?

अरे भाई, आज क्या कोई नया खा रहा हूँ।

इसके बाद वे अपने घर की ओर लौट चले और मैं पाँचू की माँ के घर की ओर चला।

बस्ती के अन्दर घुसते ही जाने पहचाने सारे लड़के लड़कियाँ—दादा जी आए हैं, दादा जी आए हैं, कहकर मुझे घेर लिया। सभी

की शिकायत है—पूरे साल भर मैं उनके यहाँ क्यों नहीं आया, क्यों उन्हें छोड़ दिया है, क्यों उन्हें भुला दिया है इत्यादि।

पाँचू की माँ के घर जाकर देखा उसका सात साल का पाँचू विद्यासागर महाशय का वर्ण परिचय खोले मुँह लटकाए चबूतरे पर बैठा है।

पाँचू का मुखड़ा देखकर बड़ी माया हुई। उसकी माँ को पुकार कर कहा—सुनती हो, पाँचू की माँ, तुम्हारा लड़का इस तरह से क्यों बैठा हुआ है ? पढ़ना पड़ रहा है शायद इसीलिए क्या ?

पाँचू की माँ ने कहा—देखो न दादा जी, कब से कह रही हूँ, स्कूल में कल जो पढ़ा है, उसे घर में अच्छी तरह पढ़ ले, तब तो मास्टर के सामने सबक सुना सकेगा। लेकिन अभागा लड़का हर्गिज सुनने के लिए तैयार नहीं। इधर पैसे भी नहीं हैं कि घर में मास्टर रखकर पढ़ाऊँ।

मैंने कहा—अच्छा, तुम अब जरा तम्बाकू चढ़ा लाओ तो, मैं ही तुम्हारे पाँचू को पढ़ाता हूँ। इतना कहकर मैं पाँचू को पढ़ाने बैठ गया।

चिलम चढ़ा हुक्के को मुझे थमाते हुए पाँचू की माँ कहने लगी—दादा जी, तुम्हीं बताओ तो, अभागे को कितना समझाती हूँ कि ज्यादा न पढ़े तो कम से कम पहली और दूसरी किताब भी तो पढ़ ले, आपकी बातें कह कर कितना समझाती हूँ। कहती हूँ, यह जो हमारे दादा जी हैं, सुनती हूँ वे किताब लिखते हैं। इससे कहती हूँ कि अरे अभागे अगर कुछ न भी कर सका पहली दूसरी किताब पढ़कर हमारे दादा जी की तरह चार किताबें लिख कर भी तो पेट पाल सकेगा। लेकिन अभागा किसी तरह पढ़ता ही नहीं। जिद्द कर रहा है कि अब स्कूल भी नहीं जायगा। आप कृपा करके इसे जरा समझा दो दादा

जी, आपकी बातें सुनकर थोड़ी सी अक्ल तो आए। मैं तब तक आपके भोजन का इन्तजाम करती आऊँ, क्यों!

मैंने कहा—मान लिया कि ये बातें मैं पाँचू को समझाए देता हूँ मगर यह भोजन वगैरह की झंझट क्यों? इसे आज रहने ही दो।

पाँचू की माँ बोली—यह नहीं होने का दादा जी, आज आप कितने दिनों के बाद आए हो, थोड़ा सा भोजन कराए बगैर नहीं जाने दूँगी।

उस दिन दोपहर का भोजन पाँचू की माँ के यहाँ ही करना पड़ा। इसके बाद बस्ती में इस घर उस घर एक-एक बार पगधूलि देते-देते दिन बीत गया। जब घर लौटा तो शाम हो गई थी।

—:❀:—

कालीसाधक हरिपद

साहित्यिक सौरीन्द्रमोहन मुखोपाध्याय के बैठके में उस दिन कितने ही पुराने मित्रों का समागम हुआ था। शरत्चन्द्र भी आये थे। सौरीन्द्रमोहन शरत्चन्द्र के बचपन के साथी थे। नाना विषयों पर बातें हो रही थीं। एक ओर कई लोग मिल कर सपने में देवी देवताओं की दी हुई जड़ी बूटियों पर बहस कर रहे थे। कोई पक्ष में था कोई विपक्ष में।

किसी ने कहा—श्मशान कालीप्रदत्त दवा के बारे में कितनी ही बातें सुनी हैं, यह क्या सब की सब झूठी हैं? अमावस की गहरी रात को अगर कोई चिता के पास जाकर धरना दे तो सुना है बड़ा अच्छा फल मिलता है। दवा तो मिलती ही है, सुना है कभी-कभी काली माई का दर्शन भी मिल जाता है।

अब तक शरत्चन्द्र चुपचाप इनकी बहस सुन रहे थे। श्मशान काली की बात सुनकर बोले—तुम्हारी बात सुनकर मुझे अपने काली-साधक हरिपद की बात याद आ गई।

बहुतों ने जानना चाहा कि यह काली साधक हरिपद कौन है? तब शरत्चन्द्र बोले—

हरिपद मेरे ही गाँव का था। सिर पर लम्बी-लम्बी जुल्फें थीं, शाक्तों का रक्ताम्बर पहनता था, गले में जवाकुसुम की माला रहती थी, मस्तक पर अठन्नी भर का लाल टीका लगाता था। उसका चेहरा ही

अपने चेहरे से ही समझा देता था कि वह काली साधक है। हमारे गाँव के अलावा आस-पास के चार-पाँच गाँवों में हरिपद की बड़ी प्रतिष्ठा थी। बीमार पड़ने पर किसी को चिन्ता करने की जरूरत नहीं पड़ती थी। थोड़ी मेहनत करके हरिपद के पास जाकर नैवेद्य के लिए कई आने पैसे देने से मामूली बीमारी रात भर में ठीक हो जाती थी और कड़ी बीमारी के लिए अमावस की प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। अगले दिन रामबाण औषधियाँ लिए हरिपद दरवाजे पर दिखाई पड़ता। दवा स्वयं माँ ने उसके हाथों में दी है या उपदेश दिया है कि अमुक पेड़ की जड़, अमुक के अनुपान में देनी होगी।

हरिपद की माँ कौन है वह तुम समझ गये होगे। श्मशानवासिनी, मुन्डमालिनी स्वयं श्यामा हरिपद की माँ थी। गहरी रात को श्मशान जाकर किसी चिता पर बैठ कर हरिपद के माँ-माँ पुकारने पर भयंकरी का मन छटपटा उठता था। वे सीधे हरिपद के पास आ पहुँचती थीं। हरिपद से उनकी कितनी ही बातें होती थीं। कोई बीमार रहता तो हरिपद दवा माँगता। माँ सभी बातें सुनकर दवा देतीं।

हरिपद कहता—माँ काली को देखने की बात छोड़े ही देता हूँ, अमावस की रात में कोई श्मशान में जाकर चिता पर क्षण भर बैठे तो समझूँगा कि उसकी गज भर की छाती है। है कोई आस-पास के गाँव में ? सामने आए तो ?

ये बातें हरिपद को ही शोभा देती थीं। क्योंकि उसके इस चुनौती को किसी ने कभी स्वीकार नहीं किया। गाँव में कितने ही लोगों के मुँह से सुना है कि उन्होंने हरिपद की कालीसाधना परख देखी है। कई लोगों ने मिलकर कई बार उसका पीछा किया। श्मशान में जाकर चिता पर बैठकर वह व्याकुल होकर माँ-माँ पुकारता है।

यहाँ तक बात ठीक है। और यहाँ तक हम भी विश्वास करते थे। लेकिन इसके आगे हरिपद बढ़ा चढ़ा कर जिन बातों को कहता उन्हें मानने के लिए हम तैयार नहीं थे। हमारी उम्र तब कम थी, सिर पर खुराफात का भूत सवार रहता था, हरिपद की बातें हमें नहीं रुचती थीं। हमारे दल के किन्ना ने कहा—देख, हरिपद से काली माई की बात चीत और दवा देना इस दृश्य को अपनी आँखों से देख जीवन को सफल करना होगा। अगले अमावस को चल हम सभी चलें।

करने के लिए एक काम मिलते ही हम फौरन तैयार हो गये।

अमावस के दिन कुछ अधिक रात होने पर हमारा जत्था श्मशान में जा पहुँचा। एक तो श्मशान, उसपर अमावस। कैसी अँधेरी रात थी यह बताना मुश्किल है। हम अलग-अलग चल रहे हैं। लेकिन पास के आदमी को भी पहचाना नहीं जा सकता था।

श्मशान के बीचो-बीच एक पीपल का पेड़ था। उस पर, चढ़कर हम हरिपद की बाट जोहने लगे। अमावस की रात कालीसाधक के लिए बहुत बड़ी चीज है। हरिपद आवेगा ही इसमें हमें तनिक भी सन्देह नहीं था। लेकिन कब आवेगा यही सोचने की बात थी।

हम चुपचाप बैठे ही रहे, हाथों और पैरों के अकड़न की नौबत आ गई अभी हरिपद नहीं दिखाई पड़ा। कहीं हरिपद को किसी तरह का सन्देह न हो इसलिए हम हिल डुल नहीं रहे थे। हम सभी सोच रहे थे, बात क्या है बेटा आज आया नहीं।

इस समय उसी रास्ते से गुनगुनाते हुए किसी के आने की आहट सुनाई पड़ी। हमें सन्देह नहीं रहा कि हमारा हरिपद ही आ रहा है।

हम पेड़ से उतर कर जिधर से आवाज आ रही थी उसी ओर चल पड़े। आगे-आगे चला हमारा दलपति किन्ना।

हरिपद ने अपने लिए एक जगह चुन ली, वह किसी की चिता ही रही होगी। अंधेरे में कुछ पता नहीं चल रहा था। इसके बाद श्मशान को गुंजाते हुए उसने माँ कहकर पुकारना शुरू किया।

हरिपद चिल्लाता ही जा रहा था माँ, माँ, माँ!

अचानक किन्ना को एक बात सूझ गई। वह एक-एक पग कर हरिपद की ओर बढ़ा और एक तरह से कानों के पास मुँह ले जाकर जनाना आवाज में चिल्ला उठा—क्यों बेटा। क्यों पुकार रहे हो?

इतना कहना था कि एक बड़ी विचित्र बात हुई। हम कहाँ सोच रहे थे कि अब हरिपद से चन्डी का स्तोत्र पाठ सुनेंगे, सो नहीं हुआ। किसी के धड़ाम से गिरने की आवाज आई। हम समझ गये कि हरिपद मूर्छित होकर गिर पड़ा है।

किन्ना के पास दियासलाई थी। उसने झट से एक काँटी जलाकर कहा—अब बना रे! देखता हूँ कालीसाधक बिलकुल बेहोश हो गया है।

हम सभी उसे उठाकर तालाब के किनारे पहुँचे। हरिपद तब भी गुंगुआ रहा था। काफी देर तक छींटे लगाने पर लगा कि अब उसे होश आया है। उसके सुगबुगाते ही हम वहाँ अब कैसे ठहरते। फौरन रफू चक्कर हो गए।

अगले दिन से हरिपद में आश्चर्यजनक परिवर्तन दिखाई पड़ा। घर पर जाकर अपने मुंह मियाँ मिट्ठू बनना बन्द हो गया। श्मशान काली को दवा भी बाँटना बन्द हो गया। कोई कुछ पूछता तो जवाब नहीं मिलता। हरिपद दूसरी ओर मुँह फेर कर चुप रह जाता।

राजू का साहस

नरेन्द्र देव के घर पर शरत्चन्द्र एक दिन चाय पी रहे थे। तरह-तरह की गप्पें हो रही थीं। इसी दौरान में इन्द्रनाथ के साहस की बात उठी।

शरतचन्द्र बोले—इन्द्रनाथ यानी राजू कितना साहसी था, इसे उसके साथ उठने-बैठने वाले ही जानते हैं। हम जहाँ से डर के मारे भाग खड़े होते थे, वहाँ वह सीना तानकर आगे बढ़ जाता था। डर तो वह जानता ही नहीं था। उसके साहस की एक कहानी सुनाता हूँ—

तब मैं स्कूल में पढ़ता था। राजू लिखाई-पढ़ाई छोड़कर लोगों की सेवा करता फिरता था। कहीं कोई विपत्ति में पड़ा है उसे उबारना, कोई बीमार पड़ा है, दवा पानी देने वाला कोई नहीं है, उसकी सेवा करना, कोई मर गया है उसको अर्थी ले जाना, ये सारे उसके काम थे।

मैं राजू का दाहिना हाथ था। जरूरत पड़ने पर राजू मुझे बुलाता। खास तौर से अर्थी अकेले नहीं ले जाई जा सकती इसलिए इस काम के लिए मुझे अकसर उसके साथ जाना पड़ता।

उस बार जगद्धात्री पूजा के ठीक अगले दिन मामा के यहाँ यात्रा हो रही थी। कलकत्ते से नामी दल आया है। टोले मुहल्ले के सभी लोग एक ओर से यात्रा देखने आए हैं। मैं भी एक कोने में बैठा तल्लीन होकर देख रहा था, इसी समय न जाने कहाँ से आकर राजू ने कान में कहा—चल उठ।

उठकर बाहर आया। राजू बोला—उस मुहल्ले के तारापद का बेटा अभी-अभी हैजे से मर गया। छोटा बच्चा था यही तीन साल का होगा। बहुतेरी कोशिशें कीं मगर बचा नहीं सका। इकलौता लड़का था। हैजे की लाश है, उसी को लेकर तारापद और उसकी औरत पागलों की तरह रो पीट रहे हैं। इस रोग की लाश को उनके पास पड़ी रहने देना नहीं चाहिए। इसीलिए सोच रहा हूँ लाश इसी दम श्मशान में पहुँचा दूँ। उस मुहल्ले के सभी तो यात्रा देखने चले आए हैं, मुहल्ला खाली है तू मेरे साथ चल।

बिना कुछ बोले चाले मैं राजू के साथ हो लिया। यात्रा देखने की यहीं इति हो गई।

तारापद और उसकी स्त्री को तरह-तरह से समझा बुझा कर शिशु केशव को उनसे छीनकर जब हम श्मशान की ओर रवाना हुए तब रात के एक बज रहे होंगे।

रास्ते पर आकर मैं राजू से बोला—साथ में एक बत्ती ले लेना अच्छा रहता।

राजू बोला—रहता तो मगर इस वक्त मिले कहाँ? देगा कौन? चल, मेरे पास दियासलाई है, जरूरत पड़ने पर उसी से काम लेंगे।

मैं आगे कुछ नहीं बोला। बच्चे की लाश लिए राजू आगे-आगे चल रहा था मैं उसके पीछे था।

श्मशान गंगा के तट पर था। जितना बड़ा था उतना ही भयावना भी। दिन में भी उस श्मशान के पास फटकने में लोगों को डर लगता था। चारों ओर बहुत दूर तक किसी बस्ती का नामोनिशान तक नहीं था। बालू के अखंड राज में कहीं-कहीं दो एक खजूर के पेड़ या कंटीली झाड़ियाँ नजर आती थीं।

श्मशान के बीचो-बीच एक झोंपड़ा था। मुर्दा जलाने आकर आँधी पानी आने पर या विश्राम की जरूरत पड़ने पर लोग इसी में आश्रय लेते थे। इस दृष्टि से झोपड़ा खास काम में आने पर भी लोग श्मशान से कहीं अधिक डरते थे इस झोपड़े से। कहते, वह भूतों का अड्डा है। रात की बात तो दर किनार, दिन में कोई साथ नहीं रहा तो लोग उसके पास तक नहीं फटकते थे।

राजू इन बातों को लेकर माथापच्ची नहीं करता था। पहले वह सीधे उसी झोपड़े में जा घुसा। उसके पीछे मैं भी घुसा सही में लेकिन स्वाभाविक दशा में नहीं। समझ रहा था कि हाथ पैरों को मानों लकवा मार रहा था। फिर भी राजू साथ था, इसी का भरोसा था।

फर्श पर लाश रखकर राजू बोला—बहुत देर से बीड़ी नहीं पी। पहले एक बीड़ी पी लूँ, क्यों?

राजू की बात पर मैं हुँकारी भरने जा रहा था लेकिन उसके पहले ही कानों में साफ आवाज आई अँधेरे से कोई बोला—एक मुझे दोगे?

मेरी उस वक्त की हालत तुम लोग आसानी से समझ सकते हो। मेरे रोंगटे खड़े हो गये। बदन से पसीने की धार बह चली।

राजू ने खखार कर पूछा—कौन?

उत्तर मिला—मैं!

मैं, कौन—कह कर राजू ने दियासलाई जलाई।

रोशनी में देखा हमारी बगल में एक मैले बिस्तर पर आदमी-सा कोई सोया हुआ है। उसका आपादमस्तक गुदड़ी से ढका हुआ है।

राजू ने अच्छी तरह देखकर कहा—यह एक और लाश है रे। कोई फूँकने आया था छोड़कर चला गया है। शायद लकड़ी लाने गये होंगे।

तब किसी ने फिर कहा—नहीं जी, मैं मुर्दा नहीं हूँ।

अब मैंने राजू के दोनों हाथों को दबाया। कुछ कहना चाहा लेकिन कह न सका। मेरे दाँत बैठ गए थे।

राजू, बलिहारी है राजू की, उसने निडर होकर फिर पूछा—तो तुम कौन हो?

सलाई की पहली काँड़ी जल चुकी थी, राजू ने दूसरी धराई। गुदड़ी के अन्दर से आवाज आई। मैं गंगा यात्री हूँ।

राजू ने आगे बढ़कर गुदड़ी का एक छोर उठाया। हमने देखा कि करीब ८० वर्ष का बूढ़ा एकटक हमारी ओर देख रहा है। चेहरे पर मृत्यु का लेशमात्र नहीं है।

राजू ने मुझे बढ़ावा देते हुए कहा डर मत रे। यह मुर्दा नहीं है, गंगा-यात्री ही है।

फिर एक बीड़ी सुलगा कर उसने बूढ़े से मुँह में डाल दी। बड़े मजे में बीड़ी का एक कश खींचकर बूढ़ा बोला—ओफ, बेटा तुमने बचा लिया। कई दिनों से आया हूँ, माँगने पर एक बीड़ी भी नहीं देते। बड़े अभागे हैं।

अब राजू ने बूढ़े से पूछना शुरू किया, आये कै दिन हुए? तुम्हारे साथ कौन-कौन आए हैं? वे कहाँ हैं?

बूढ़ा बोला—बेटा आये आज तीन दिन हुए। मौत नहीं आ रही है। मेरे दो नाती और मुहल्ले का एक आदमी मुझे ले आए हैं। वे भी तभी से मेरे साथ हैं। कहीं कलकत्ते से कोई यात्रा दल गाने आया है, कुछ देर पहले वे वहीं गये हैं। मेरे मरने में देर हो रही है, इसलिए वे मुझ पर बुरी तरह नाराज हो रहे हैं, बेटा। कहते हैं, मरा समझ कर बुड्ढे को निकाला और यहाँ गंगा की हवा खाकर चंगा होता जा रहा है, मरने

का नाम नहीं लेता। क्या जानूँ बेटा, मेरा क्या होगा। गंगा-यात्री बन कर आने पर कहते हैं घर नहीं लौटना चाहिए।

राजू बोला—किसने कहा लौटना नहीं चाहिए? देखकर तो लगता है कि तुम अभी नहीं मरोगे। इस बार चंगे हो। तुम्हारा घर कहाँ है? चलो घर पहुँचा आवें। हम तुम्हें साथ ले चलेंगे। नहीं तो, घर नहीं लौटाना चाहिए कहकर जो लोग तुम्हें ले आए हैं, वही शायद गला दबा कर तुम्हें मार डालेंगे।

बूढ़ा बोला—तुम ठीक कह रहे हो, बेटा। कई दिनों से वे यही कहकर मुझे धमकियाँ दे रहे हैं। किसी भी क्षण गला दबा सकते हैं।

राजू बोला—ठीक है, तुम्हें अब डरने की कोई बात नहीं। हम अपना काम खतम कर लें। फिर तुम्हें यहाँ से ले चलेंगे। आज रात तुम हमारे घर में ही रहना। कल तुम्हारे घर पहुँचा आएँगे।

तारापद के लड़के को गाड़ दिया गया। राजू गंगा में डुबकी लगाकर आया और बूढ़े को अकेले ही कंधे पर उठा लिया। मुझसे बोला—तू इसकी गुदड़ी काँख में दबा ले।

जाते समय जैसा हुआ था आते समय भी वैसा ही हुआ—राजू आगे-आगे चल रहा था। बूढ़ा उसके कंधे पर था। मैं उसके पीछे गुदड़ी-बिस्तर लिए चल रहा था।

मामा के घर के पास आकर सुना कि यात्रा अब भी हो रही है।

———

गलत रास्ता

१९३४ या ३५ के वैशाख या जेठ का महीना था। एक दिन दस बजे के आस-पास सुनीति कुमार चट्टोपाध्याय रासबिहारी एवन्यू पकड़े घर लौट रहे थे। पंडितिया रोड और रासबिहारी एवन्यू के चौराहे पर आकर अचानक उन्होंने देखा कि सड़क के किनारे शरत्चन्द्र खड़े हैं। छाता हाथ में है, सिर पर धूप लग रही है। फिर भी छाता नहीं खोला है। खड़े-खड़े कुछ सोच रहे हैं।

सुनीति कुमार शरत्चन्द्र के विशेष स्नेह भाजन थे। दोनों एक ही मुहल्ले में रहते थे। सुनीति बाबू ने नमस्कार करके पूछा—इस धूप में आप यहाँ रास्ते पर खड़े हुए हैं?

शरत्चन्द्र ने कहा—कल रात को इसी तरफ की एक दूकान से टेलीफोन किया था, पैसे नहीं दिये थे। शायद पैसा वे लेते भी नहीं। लेकिन मुझे जाकर देना तो चाहिये। वही देने निकला हूँ। घर में फोन रहते दूकान पर आकर शरत्चन्द्र ने फोन किया था, इस बात को सुन कर सुनीति बाबू को कुछ अचरज सा हुआ। इसके अलावा, रात को फोन करने की ऐसी कौन सी जरूरत पड़ी थी?

शरत्चन्द्र ने कहा—कल रात को यहाँ एक बात हो गई है। शाम को नरेन देव के यहाँ गया था। बात-चीत करते-करते काफी रात हो गई। लौटते समय नरेन और राधारानी घर तक पहुँचाने के लिए

मेरे साथ आ रहे थे। हम तीनों जब यहाँ तक पहुँचे तो देखा कि वहाँ उस पेड़ के नीचे चार आदमी बहस कर रहे हैं। रात काफी गुजर चुकी है, सड़क पर लोगों का आना जाना बहुत कम हो गया है। उन्हें देखकर कुछ कुतूहल हुआ। सोच रहा था कि क्या करूँ, इसी समय उनमें से एक ने हमें पुकार कर कहा आप लोग जरा इधर आइये तो।

हमलोगों के आगे बढ़ते ही सड़क के किनारे खून से रँगी एक पोटली दिखाकर वे बोले—इसमें एक सद्योजात शिशु है। अभी-अभी कोई फेंक गया है। शिशु अभी भी रो रहा है। हम इस तरफ से जा रहे थे, शिशु का रोना सुनकर खड़े हो गए हैं। क्या किया जाय समझ में नहीं आता है!

सिर्फ शिशु को देखकर मुझे बड़ी माया लगी। शिशु को कैसे बचाया जाय इस बात को लेकर राधा भी बड़ी बेचैन हो उठी।

उस बँधी पोटली में बच्चा कुन्डली मारे हुए है, यह मुझसे सहा नहीं जा रहा था। एक को फुर्ती से खोल डालने के लिए कहा। खोलने पर सड़क की रोशनी में देखा कि काफी सुन्दर हृष्ट पुष्ट शिशु है। खुली हवा पाकर उसका रोना मानों कुछ कम हुआ। रास्ते के किनारे ऐसी जगह में उसे फेंका गया था कि इसी बीच उसके शरीर पर लाल चीटियों के झुण्ड ने आक्रमण शुरू कर दिया था।

समझ गया कि इसे बचाना हो तो फौरन अस्पताल में भेजना चाहिए। काफी रात हो गई है और दूकानें भी बंद हो गई है। अब फोन किया जाय तो कहाँ से? नरेन ने एक दूकान ढूँढ़कर वहाँ से फोन किया। अस्पताल से कहा गया इस तरह के रास्ते में पड़े मिले लड़के को वे नहीं ले सकते। पुलिस को खबर देनी चाहिये।

तब पुलिस को फोन किया गया। वह भी नहीं आना चाहती थी।

अन्त में नरेन ने जब मेरा नाम लिया तो पुलिसवालों ने कहा अच्छा हम आदमी भेज रहे हैं।

पुलिस के आने तक बच्चे को किस प्रकार जिन्दा रखा जाय अब यही समस्या हमारे सामने थी। राधा से कहा—तुम फौरन घर जाओ। घर से थोड़ी-सी मधु और दूध जुटाकर भेज दो। देखूँ बच्चे को पिलाया जा सकता है या नहीं। घर से थोड़ी-सी मधु और महीन कपड़े की बत्ती बनाकर भेज दी। दूध भी आ गया।

बत्ती में मधु लगाकर शिशु के मुँह में लगाया। वह बड़े मजे में चुपुर-चुपुर चूसने लगा। लेकिन उसी तरह हम उसे दूध नहीं पिला सके।

इसी तरह कुछ देर बीत गयी। नरेन, मैं और वे आदमी बच्चे को लिए पुलिस की राह देखने लगे।

पुलिसवाले जब आए तो रात के एक बज गये थे। उनमें एक हिन्दुस्तानी मुन्सी भी था। प्रवीण आदमी था। ऐसा लगा कि आदमी बुरा नहीं है। उसकी बातों में काफी दुःख और क्षोभ का भाव दिखाई पड़ा। कुछ श्लेष के साथ उन्होंने हमसे कहा—आप बंगाली भद्र लोग हैं, जिस तरह से आज कल लड़कियों को पढ़ा रहे हैं, उससे ऐसी बातें होकर ही रहेंगी। हर हफ्ते कल को देनों से इस तरह से सद्योजात शिशुओं की दो चार लाश हमेशा मिल रही है। इसके अलावा मुहल्लों के रास्तों में दो चार अक्सर न मिलते हों ऐसी बात नहीं। अँगरेजी पढ़ाकर पुरानी चाल, घर द्वार, धर्म के रास्ते पर चलना, यह सब तो आप लोग लड़कियों के मन से दूर किए दे रहे हैं। इस हालत में वे बिगड़ें न तो क्या करें। हमारे समाज का जो ढाँचा है, उसमें इस तरह की घटनाएँ वर्ग और जाति विशेष में सभी जगह देखी जाती हैं। मैं चुपचाप खड़ा उसकी बातें सुनता रहा। बच्चे को लेकर वे चले गये।

शरत्चन्द्र ने सुनीति बाबू से कहा—देखो, कल से मैं निरन्तर सोच रहा हूँ, स्कूल कालिजों में जो आधुनिक शिक्षा हम लड़कियों को दे रहे हैं, क्या उसी के कारण यह सारा अनाचार, यह सारी हृदयहीनता दिखाई पड़ रही है? तो क्या हम गलत रास्ते पर चल रहे हैं? आज फिर इस जगह पहुँच कर पिछली रात की सारी घटनायें और पुलिस की वे बातें बार-बार याद आ रही थीं। इसीलिए खड़ा-खड़ा सोच रहा था। तुमसे भी पूछता हूँ, सुनीति, लड़कियों को पढ़ाकर क्या हम गलती कर रहे हैं?

सुनीति बाबू ने कहा—आधुनिक शिक्षा को इसके लिए जिम्मेदार ठहराना शायद ठीक नहीं होगा। मेरा विश्वास है कि इसके पीछे हमारी अर्थनीतिक अवनति छिपी हुई है जिसके फल-स्वरूप समाज में विवाह योग्य अविवाहित पुरुष और स्त्रियों की संख्या दिन पर दिन बढ़ती ही जा रही है।

सुनीति कुमार की बातें सुनकर शरत्चन्द्र ने धीरे-धीरे कहा—जो कुछ कह रहे हो, शायद वही ठीक है। फिर भी बिना सोचे नहीं रहा जाता कि हम गलत रास्ते पर तो नहीं चल रहे हैं?

———

बाराती

यमुना पत्रिका का दफ्तर। रोज की भाँति उस दिन भी शाम के बाद मजलिस काफी जम गई थी। यमुना के संचालक और हितैषियों में कितने ही उपस्थित हैं। शरत्चन्द्र भी आए हैं। तरह-तरह की गप्पें हो रही हैं। इसी समय किसी गाँव में बाराती न्योता पूरा करने जाकर बेशुमार परेशानी की कहानी सुनाई सौरीन्द्र मोहन मुखोपाध्याय ने। सौरीन्द्र मोहन की कहानी सुनकर शरत्चन्द्र बोले—यह ऐसी कौन-सी बात है। अपनी मुसीबत की कहानी सुनाता हूँ, सुनो।

उन दिनों कई महीनों से मैं कलकत्ते के एक मेस में रह रहा था। वहाँ मेरे कई हमउम्र रहते थे, हम में काफी दोस्ती भी हो गई थी। एक का घर बारासात की ओर था। उसने अपने ब्याह में हमें निमंत्रित किया, बारात में जाना होगा। लड़की का घर था श्रीरामपुर में। वर के साथ बारासात से श्रीरामपुर जाना हम सभी के लिए संभव नहीं हुआ। इसलिए तय हुआ कि हम लोग अपना-अपना काम करके रेल से सीधे श्रीरामपुर पहुँचेंगे। मित्र हम पाँच आदमियों का इन्टर का वापसी किराया देकर दो दिन पहले ही घर चले गए। जाने के पहले गुलाबी कागज पर छपी ब्याह की चिट्ठी देकर बार-बार हमें आने के लिए कह गए।

ब्याह के दिन काम-धाम खत्म कर सजधज कर शाम तक पहले ही निकल पड़ा।

जब श्रीरामपुर स्टेशन पर उतरा काफी अँधेरा हो चुका था। टिकट कलक्टर को आधा टिकट देकर जब स्टेशन के बाहर आया तो याद आया कि श्रीरामपुर तो आया मगर अब जाऊँ कहाँ? ब्याह की वह गुलाबी चिट्ठी हम सभी लाना भूल गए थे। यहाँ तक कि लड़की के बाप का नाम भी किसी को याद नहीं है। अब हमारी हालत जरा सोच देखो।

अगत्या हममें तय पाया कि ब्याह तो सभी घरों में नहीं हो रहा है, इसलिए चलो सड़क पकड़ कर चलें। रास्ते में जिस मकान की छत पर शामियाना और दरवाजे पर रोशन चौकी दिखाई पड़ेगी वहाँ पूछताछ करने पर पता चल जायगा।

हम पाँचों मित्र रवाना हुए। चलते चले जा रहे थे मगर कहीं भी ब्याह हो रहा हो ऐसा मकान नहीं दिखाई पड़ा। लगने लगा कि श्रीरामपुर के बाप-माँ कितने हृदयहीन हैं, ब्याह के दिन लड़की का ब्याह नहीं करते हैं।

अचानक गली के अन्दर से शंख की आवाज सुनाई पड़ी। सोचा, हो न हो यही लड़की का घर हो। जल्दी से उस मकान को ढूँढ़ निकाला। देखा सामने के एक मकान में जनवासा है। वर के लिए जरीदार मखमल का बिछौना बिछाया गया है मगर वर का कहीं पता नहीं है। सोचा, शाम के बाद ही ब्याह की लगन है, वर शायद मकान के अन्दर होगा।

मकान में लोगों की रेलमपेल थी। हम किसी को नहीं पहचानते और हमें भी कोई नहीं पहचानता। पहचानें भी तो कैसे हम तो केवल वर को ही पहचानते हैं। छोड़ो, जान-पहचान की कौन ऐसी जरूरत पड़ी है, हम बाराती हैं, मजे का भोजन मिल गया तो हमारा काम बन गया। जनवासे में एक ओर हम जाकर बैठ गए।

हम आपस में गप्प करने लगे। कुछ देर के बाद एक लड़का ब्याह की कविता बाँटने आया। हमारे हाथों में भी एक एक दे गया। कविता पढ़कर हमारी आँखें पथरा गईं। वर का नाम कोई पाल था। हमारे मित्र की उपाधि चक्रवर्ती थी अर्थात् वे ब्राह्मण थे। अतएव अब हम वहाँ कैसे बैठते। सबकी नजरें बचाते धीरे-धीरे खिसक गये।

रास्ते में काफी अँधेरा हो गया था। हमारे मन में भी चिन्ता से अँधेरा छा गया। रास्ते में जिसे देखता उसी से पूछता—महाशय, यहाँ किसी ब्राह्मण के यहाँ ब्याह हो रहा है, बतला सकते हैं? हमारी बातें सुनकर कोई मुस्करा देता कोई झुँझला उठता। कोई संदेह की दृष्टि से हमारी ओर क्षण भर देखता। हम बड़ी मुसीबत में पड़े। कोई बात क्यों नहीं करता।

अन्त में एक आदमी को दया आई। उन्होंने हमारी सारी बातें सुनकर कहा—बारात कहाँ से आई है, बताइये तो।

हमने कहा—बारासात से।

बारासात—हमें ऐसा लगा कि इसके बारे में कुछ जानते हैं। पास के एक मकान का पता भी दिया। उनके निर्देशानुसार कई गलियों का चक्कर काटते हुए हम एक ब्याहवाले मकान के सामने जा पहुँचे। पूछने पर पता चला कि यहाँ का वर कोई चक्रवर्ती है।

मकान के सामने ही बड़ा-सा आँगन था। रास्ते से घेरा पार कर अन्दर घुसना पड़ता था। आँगन में ही जनवासा लगा है। जनवासे में काफी भीड़-भाड़ होनी चाहिये थी लेकिन वहाँ वैसी कोई बात नहीं दिखाई पड़ी। चारों ओर सुनसान खाली-खाली-सा लग रहा था। हमें बात खटक गई। दो-एक आदमियों से पूछने पर पता लगा कि ब्याह के पहले दहेज को लेकर लड़का लड़कीवालों में गहरी झड़प हो गई है।

वजन में सोना कुछ कम पड़ गया था। लड़के के बाप लड़के को उठाए चले जा रहे थे। अन्त में मुहल्ले के लोगों ने बीच बचाव करके समझौता कराया है कि लड़कीवाले रात भर में कमी पूरा करने के लिए वर के हाथों में नगद ढाई सौ रुपये देंगे। लड़की के मामा गहना गिरवी रखकर रुपये का बन्दोबस्त करने गए हैं। इधर लग्न बीती जा रही थी इसलिए विवाह शुरू हो गया।

बारातियों के आचरण की बात सुनकर हम आगबबूला हो उठे। घटना के वक्त यदि होते तो न जाने क्या कर बैठते। जो भी हो, झगड़ा जब शान्त हो गया है तो माथापच्ची करना उचित नहीं समझा।

जूते उतार कर जनवासे के एक कोने में बैठा रहा। चक्कर काटते-काटते काफी थक गए थे। और भूख भी इतनी करारी लगी थी कि क्या बताऊँ।

उधर घर के अन्दर ताबड़तोड़ शंख बजने लगा। कुछ देर बाद शंख का बजना बन्द हो गया, उलुध्वनि भी बन्द हुई। समझ गया कि ब्याह हो गया। अन्दर से लड़के वालों में से दो चार मातबर आदमी बाहर आए। उनका चेहरा काफी गम्भीर था। लड़की वालों में से एक को देखकर उन्होंने पूछा—अब रुपये मिल जायँगे न ?

जरूर मिलेंगे। लड़की के मामा खुद गहना लेकर गए हैं। बस आते ही होंगे। आप लोग बैठिए। मैं अब खिलाने-पिलाने का इन्तजाम करूँ। यह कह कर वे फिर घर के अन्दर चले गये।

अभी-अभी खिलाने का इन्तजाम हो रहा है इस बात को सुनकर हम बड़े मगन हुए। उस वक्त भूख जो लगी थी। कब अन्दर वाले सज्जन का पुनरागमन होगा, इसी आशा में हम बैठे थे।

अचानक मानो बिजली गिरी। मकान के अन्दर से गरजन सुनाई

पड़ा, खिलाऊँगा क्यों नहीं। खिलाना! रक्खो ऐसी रिस्तेदारी। ब्याह तो हो गया है। वर तो अब हमारी मुट्ठी में है। खिलाता हूँ जरा देख लो। अरे वारिन, कन्हाई, नवीन, घिन्टू तुम लोग जरा इधर तो आना। बगीचे के पेड़ों से डंडे तो बनाना। फिर जरा अच्छी तरह इनकी खातिरदारी तो करो।

सुनकर हम लोग चौंक उठे। भूख प्यास न जाने कहाँ काफूर हो गई। हम लोगों ने मजाक समझा था लेकिन इसी समय देखा कि पाँच छः जवान उधर डंडे तैयार कर रहे हैं। अब बना। न जाने क्या करेंगे। हम देखते रहे। पलक मारते महाभारत शुरू हो गया। जो भी मिल रहा है उसी की कुटाई हो रही है। हम पाँचो दोस्तों को भागने के लिए रास्ता नहीं मिल रहा था। क्षण भर जूते के लिए जरा आगा-पीछा किया। लेकिन इससे लाभ नहीं। मार के डर से जूते का मोह छोड़ना पड़ा। हम सिर पर पैर रखकर भागे।

विद्यार्थी जीवन के बाद ऐसी चौकड़ी फिर कभी नहीं भरी थी। एक तो श्रीरामपुरी अँधेरी रात थी उस पर तीर्थयात्रियों की तरह नंगा पैर! हम सरपट दौड़े चले जा रहे थे। रास्ता देखना सम्भव नहीं था। लेकिन इतना अच्छी तरह से समझ रहा था कि पैर लहू-लुहान हो रहे हैं। चोट लगने पर क्षण भर रुककर उसे देखें इसकी सूरत नहीं थी। कुछ अभागे पीछा कर रहे थे। पैर चलाने के साथ ही हम लौटकर देखते भी जाते थे कि अभागे अभी कितनी दूर हैं।

दौड़ते-दौड़ते जब हम गंगा के किनारे पहुँचे तब कहीं अपने को निरापद समझा। किसी के मुँह से कोई बात नहीं निकल रही थी, सभी हाथ पैर फैलाकर दिल खोलकर हाँफ रहे थे। पसीने से भींग कर तर हो गये थे! पैरों की ओर देखकर सभी का शोक एक बार फिर उमड़ पड़ा।

पैरों का क्या बयान करूँ, कितनी जगह कट-कुट गया था, इसका कोई ठिकाना नहीं। कितनी ही कटी जगहों में खून जमकर सूजन पैदा हो गई थी। सोचा, इससे तो कहीं अच्छा था खड़े होकर डंडे की मार सहता।

गंगा के किनारे जाकर हम लोगों ने पैर को अच्छी तरह से धोया। चेहरे पर भी छींटे लगाये। इससे तबीयत जरा सँभली सही में। लेकिन एक नयी बीमारी पैदा हुई। वही पुरानी भूख—जान बचाने के फेर में भूख की आग को इतनी देर तक भूल ही गया था। पुरानी भूख ने फिर सताना शुरू किया। भूख का क्या कसूर, बताओ। उस वक्त रात भी कुछ कम नहीं हुई थी और उसपर शाम से कसरत की बात तो सुन ही चुके हो। बत्तीसों नाड़ियों की रस्साकसी यह तो कोई कम बात नहीं हैं। हमें फिर उठना ही पड़ा। उद्देश्य था कहीं किसी दूकान या हाट बाजार से कोई खाने-पीने की चीज जुटाना। घूमते-घामते हम एक दूकान के सामने आ पहुँचे। टट्टर अभी खुला हुआ था! लेकिन दूकानदार चटाई और तकिया लेकर सोने की तैयारी कर रहा था। हमने उससे कहा—भइया जरा रुको, दूकान में कुछ खाने की चीज है!

उसने कहा जी हाँ है। समोसे, निमकी, गजा और गुलाबजामुन।

हमने कहा—अच्छी बात है। काम चल जायगा। हम पाँच आदमी हैं बड़ी करारी भूख लगी है, जरा अच्छी तरह से खिलाओ तो।

उतनी रात को पाँच मालदार गाहकों को पाकर दूकानदार फूला न समाया। उसने फौरन मुँह हाथ धोने के लिए पानी दिया। इसके बाद शाल पत्ते के दोनों में नमकीन और मिठाइयाँ देने लगा।

उसके तैयार माल को हमने पलक गिरते साफ कर दिया। भर पेट पानी पीकर पूछा—कितने हुए बताओ तो!

दूकानदार बड़ा हिसाबी था। फौरन हिसाब लगाकर के बताया—जी, साढ़े सात रुपये।

हम सभी जेब टटोल गए पर तीन रुपये से ज्यादा नहीं निकले। अंत में रुपये दूकानदार को देते हुए कहा—देखो, मारो चाहे काटो, इससे ज्यादा एक फूटी कौड़ी भी हमारे पास नहीं है।

तीन रुपये देखकर दूकानदार की आँखें पथरा गईं। वह पत्थर की मूर्ति की तरह खड़ा रहा।

हमने कहा—क्या करें तुम्हीं बताओ। कलकत्ते से बारात में तुम्हारे शहर में आए थे। वहाँ एक दाना भी नहीं मिला। उल्टे डण्डा लेकर खदेड़ा। दौड़ते-दौड़ते दम निकला जा रहा था तुम्हारी मिठाई ने हमारी जान बचा ली। हमें क्या पता था कि ऐसी गलती होगी नहीं तो इतना कम पैसा लेकर नहीं निकलते और पहले से पैसे का हिसाब करके लाने की बात भी नहीं सूझी। भूख के मारे क्या ये बातें याद आती थीं। अब इन पाँच वापसी टिकटों के सिवा कुछ भी नहीं है। चाहो तो तुम इन्हें ले सकते हो न होगा तो हम पैदल ही कलकत्ता चले जायँगे।

दूकानदार ने कहा—रहने दीजिए। इसके बाद हम धीरे-धीरे दूकान से निकल पड़े।

कुछ दूर जाकर पीछे की ओर मुड़कर देखा कि दूकानदार मुँह बाए हमारी ओर देख रहा है!

सौरीन्द्रनाथ बड़े कुतूहल से कहानी सुन रहे थे। शरत्चन्द्र ने एक दूसरा सिगार सुलगाया। सौरीन्द्रनाथ बोले—सच कहता हूँ शरत् दादा आपके बाराती बनने और मेरे बाराती बनने में जमीन आसमान का फर्क है। मैं तो आपके घुटनों तक भी नहीं पहुँच सकता।

मरने के बाद

एक दिन शाम को शरत्चन्द्र बालीगंज के मकान में अमूल्यचरण विद्याभूषण और नरेन्द्रनाथ बसु से प्रेततत्व पर बात-चीत कर रहे थे। शरत्चन्द्र बोले--सुना है, आदमी मरकर फिर दिखाई पड़ता है। यह कैसे संभव है, कुछ समझ में नहीं आता।

अमूल्यचरण ने कहा—मेरे जीवन में एक ऐसी घटना हुई थी। बहुत दिन पहले अपने एक गुरुजन को मैंने एक बार देखा था, यहाँ तक कि उन्होंने उस वक्त मुझे हिदायत दी थी जिसके अनुसार काम करने से मेरा बड़ा उपकार हुआ था।

शरत्चन्द्र बोले—मेरे अपने जीवन में ऐसी कोई घटना नहीं घटी है सही में लेकिन मेरे मामा के घर इसी तरह की एक आश्चर्यजनक बात हुई थी। पिताजी की जबानी उसकी कहानी सुनी है, रिश्तेदारों की जबानी भी सुना, सारी बात सुनकर तुम्हारी समझ में आ जायगी।

भागलपुर में मेरे मामा का पक्का मकान था उसके पिछवाड़े एक मरकोठा था। इस कोठे के नीचे तीन कमरे थे मगर ऊपर एक ही बड़ा सा कमरा था। नीचे के तीन कमरे काम में आते थे, ऊपर का कमरा गोदाम के काम में आता था। वह मिट्टी के बर्तनों तथा दूसरी चीजों से भरा रहता था। एक कमसिन बहू ऊपर के कमरे में फाँसी लगाकर मर गई थी, इसलिए इसमें कोई नहीं रहता था।

मामा के यहाँ हर साल जगद्धात्री पूजा बड़े धूम-धाम से होती थी।

नाते रिश्ते के बहुत से लोग आते थे, कुछ दिनों तक घर लोगों से ठसाठस भरा रहता था। एक बार पूजा में इतने लोग आए कि सोने के लिए जगह नहीं रह गई। जगद्धात्री पूजा अगहन के आसपास होती है, ठंड में खुली दालान में भी नहीं सोया जा सकता है। पिता और छोटे नाना अर्थात् माँ के छोटे काका एक उम्र के थे। इन लोगों ने मरकोठे पर ही सोना तय किया। चीज वस्तु हटाकर थोड़ी सी जगह साफ की गई। दो खाट भी डाल दिए गए। रात में खा पीकर वे लोग वहीं जाकर सो गए।

रात के एक बजे होंगे, अचानक पिता बड़े जोर से चिल्ला उठे—अरे बाप रे, वहाँ कौन है रे?

चिल्लाहट से नाना की नींद टूट गई, वे हड़बड़ा कर उठ गए। घर के और लोग भी दौड़ पड़े। सबके प्रश्नों के उत्तर में पिता बोले—खिड़की के पास कोई आकर खड़ा था। लम्बा कद, सुन्दर चेहरा, गले में जनेऊ और शिर पर मोटी चोटी थी। अचानक इतने नजदीक उस मूर्ति को देखकर मैं डर के मारे चिल्ला उठा था।

पिता की बातें सुनकर सभी हँसने लगे।

कोई-कोई बोले—सपना देखा होगा। औरत की मूर्ति होती तो समझते कि कोई कारण है।

पिता घर के दामाद थे, बहुत लजा गए। सोचा—हो सकता है कि सपना ही देखा होगा।

अगले दिन रात को पिता और छोटे नाना दोनों जने फिर उसी कमरे में सोये। पिछली रात को अच्छी नींद न आने के कारण पिता लेटते ही सो गये। उस दिन आधी रात में फिर कोई आवाज सुनाई पड़ी। इस बार पिता नहीं छोटे नाना की बारी थी। पिता की नींद टूट

गई फिर सभी दौड़ पड़े । छोटे नाना के बदन से पसीना टपक रहा था। क्या हुआ है पूछने पर बोले—खिड़की के पास आकर कोई मेरी ओर एक टक देख रहा था। दामाद ने कल जिसे देखा था ठीक वही। वैसा ही लम्बा चौड़ा देह, गले में मोटी जनेऊ रुद्राक्ष की माला।

छोटे नाना की बातों पर भी किसी ने विश्वास नही किया। लोग बोले कुछ नहीं है। दामाद की बातें तुम्हें याद थी, तुमने भी सपना देखा है।

छोटे नाना बोले—तुम लोग कुछ भी कहो, मैंने साफ देखा है। सच हो चाहे सपना हो। अब इस घर में नहीं सोऊँगा।

मेरे नाना की हालत अच्छी थी। घर मेहमान अक्सर आये रहते थे और ये लोग भी अच्छी खातिरदारी करते थे। ऊपर जिस घटना की बात कही उसके बारह चौदह साल पहले एक दिन एक ब्राह्मण नाना के यहाँ आ टिका। फिर वे कहीं नहीं गये। यहीं रह गये। सभी उन्हें भट्टाचार्य जी कह कर पुकारते थे। भट्टाचार्य जी बड़े ही निष्ठावान ब्राह्मण थे, शास्त्र अध्ययन, पूजा पाठ में ही दिन बिताते थे।

पिता और छोटे नाना की जबानी अगले दिन उस रुद्राक्ष की माला पहने मूर्ति की बात सुनकर भट्टाचार्य जी बोले—आज रात को मैं उस घर में सोऊँगा। दिन में कोठे पर तुलसी का धूप जलाऊँगा और रात को सिंहासन सहित नारायण को ले जाकर बैठाऊँगा। फिर देखूँ क्या होता है।

भट्टाचार्य जी यथानियम पूजा पाठ करके अकेले कोठे पर जा सोये। लेकिन रात के दो बजे के करीब जो घटना घटी वह और भी भयंकर थी। विकट आर्तनाद कर भट्टाचार्य जी बेहोश हो गये।

घर अन्दर से बन्द था। उन दिनों आज की तरह कब्जे नहीं लगाये जाते थे। अर्गल लगती थी। किसी तरह लोग कमरे में घुसे। पानी के

छींटे देकर देर तक पंखा झलने पर भट्टाचार्य जी होश में आये। सभी ने चिन्तित होकर प्रश्न किया—बात क्या है?

वे इतना ही बोले—मुझसे कुछ न पूछो। मैं कुछ भी नहीं बता सकूँगा।

सबेरे भट्टाचार्य जी को बुखार हो आया। ऐसा बुखार कि डाक्टर बुलाना पड़ा। इलाज में कई दिन बीत गये लेकिन बुखार उतरा नहीं। कोई बारह तेरह दिनों के बाद उन्होंने मेरे नाना को बुला कर कहा—सुनिए, इस बुखार से मुझे छुटकारा नहीं मिलेगा। मेरा फूल अगर काशी के मणिकर्णिका भिजवाने का बचन दें तो मैं सुख से मर सकूँगा।

भट्टाचार्य जी को लेकर अब काशी कौन जाय यही समस्या सामने आई। पहले ही कह चुका हूँ कि छोटे नाना और पिता हमउम्र थे। और दोनों में गहरी दोस्ती थी। अन्त में वे ही उन्हें ले जाने के लिए तैयार हुए। चन्द दिनों के बाद एक नौकर को साथ ले भट्टाचार्य जी को लेकर वे काशी रवाना हुए।

काशी में किराये के मकान के निचले तल्ले में भट्टाचार्य जी को रखा गया। छोटे नाना और पिता भी उसी कमरे में रात को रहते थे। कई दिन बीत गये। भट्टाचार्य जी की हालत दिन पर दिन बिगड़ती ही गई। तीन दिनों से लगातार स्वाँस चल रहा था, इसी समय एक दिन आधी रात को छोटे नाना ने अचानक देखा—एक आदमी खिड़की के बाहर से बारबार झाँक रहा है। छोटे नाना जगे हुए थे, पिता सो रहे थे। कौन-कौन कहकर उनके चिल्लाते ही पिताजी जग पड़े। जागकर पिता ने भी साफ देखा—कोई आदमी बाहर से मुँह बढ़ाकर भट्टाचार्य जी की ओर देख रहा है।

पिता जल्दी से बाहर निकल आये मगर कहीं कोई दिखाई न पड़ा।

घर में जाकर पिता बोले—छोटे बाबूजी चेहरा पहचाना-पहचाना -सा लगा न !

छोटे नाना बोले—ठीक कहते हो, मैं भी यही सोच रहा था।

सबेरे-सबेरे ही भट्टाचार्य जी चल बसे।

काशी में कुछ ऐसे लोग हैं, मुर्दा जलाना ही जिनका पेशा है। खबर पाकर एक-एक करके छ सात आदमी आ जुटे। उनमें से एक ने छोटे नाना के पास जाकर कहा—देखिए ये जब आप लोगों के कोई नहीं हैं तो एक काम कीजिए, मैं उत्तम ब्राह्मण की संतान हूँ, दाग देने का काम मेरे ही ऊपर छोड़िए।

पिता और छोटे नाना ने सोचा—बात तो सही है, वह दाग क्यों करें। वे राजी होते हुए बोले—अच्छी बात है, यही सही, आप ही दाग दीजिए।

उसने बड़े आग्रह के साथ दाग दिया। यही नहीं, श्मशान के सारे काम भी उसने एक तरह से अकेले ही किया।

आदमी काम काज में जैसा था, देखने में गठीला और उतना ही सुन्दर था। पिता और छोटे नाना दोनों मन ही मन सोच रहे थे—इसे कहीं देखा है। चेहरा जाना पहचाना सा लग रहा है। दोनों एक ही बात सोच रहे थे सही में। लेकिन कोई कुछ कह नहीं रहा था।

शाम होते-होते सभी डेरे पर लौट आये। अग्निस्पर्श करने के बाद साथ में जो लोग गये थे उन्हें आठ-आठ आने पैसे और जलपान कराया गया। लेकिन दाग देने वाला आदमी कहीं नहीं दिखाई पड़ा।

छोटे नाना ने पूछा—आप लोगों में से एक-आदमी कहाँ गये उन्हें तो नहीं देख रहा हूँ।

वे बोले—वह तो आप ही का आदमी है, हमारे दल का कोई नहीं उसे तो हम लोगों ने पहले कभी नहीं देखा था।

पिता और छोटे नाना उस समय कुछ नहीं बोले। उनके चले जाने के बाद पिता बोले बाबूजी, एक बात बताओगे—हमने भागलपुर में जिस आदमी को देखा था बताओ वह यही था कि नहीं ?

छोटे नाना बोले—हाँ, यह वही आदमी था। इसमें तनिक भी संदेह नहीं। जब उसने आकर दाग देने की बात कही तभी से मुझे लग रहा था कि इसे कहीं पहले देखा है। कितनी विचित्र बात है। दाग तक दे गया लेकिन कुछ भी समझने नहीं दिया।

घर लौटकर उन्होंने लोगों को सारी कथा कह सुनाई, सभी दंग रह गये। लेकिन इस रहस्य का पता किसी को भी न चला।

घर में भट्टाचार्य जी का किरमिच का बैग था। उसे खोलने पर कई मरद की धोतियाँ, दान में मिले सात आठ सोने के नथ, पाँच या छ सोने की अंगूठी और कई चिट्ठियाँ मिलीं। एक चिट्ठी में भट्टाचार्य जी के घर का पता लिखा था। नाना बोले—भट्टाचार्य जी के यहाँ के पोस्टमास्टर के नाम चिट्ठी लिख दो कि वे कृपाकर मौत की खबर उनके घर वालों तक पहुँचा दें। और यहाँ उनकी जो चीजें हैं घर से कोई आये तो दे दी जाएँगी।

चिट्ठी लिखी गई। बहुत दिनों में एक अधेड़ विधवा ने आकर परिचय दिया कि वे भट्टाचार्य जी के रिश्ते में भतीजे की स्त्री हैं। गाँव के कई सज्जनों और पोस्टमास्टर की लिखी चिट्ठी साथ लाई थीं।

उनसे पता चला कि—भट्टाचार्य जी ने संसार छोड़कर सन्यास ले लिया था। उनकी स्त्री पहले ही मर गई थी। एक लड़का था वह पाठशाला से उपाधि भी पा चुका था एक दिन किसी बात को लेकर

बाप बेटे से कहा सुनी हो गई। उसी दिन लड़के ने बगीचे के एक पेड़ में फाँसी लगा ली। भट्टाचार्य जी ने अपना सब कुछ सम्बन्धियों में बाँट कर सन्यास ले लिया।

भट्टाचार्य जी का लड़का देखने में बड़ा सुन्दर था। गठीला बदन था, सिर पर मोटी चोटी थी।

काफी मोटी जनेऊ पहनने का उसे शौक था। लड़के का वर्णन सुनकर पिता और छोटे नाना दोनों ही बोले—हूबहू मिल रहा है। हमने इसी लड़के को ही देखा था।

हमारी समझ में आ गया कि भट्टाचार्य जी कोठे पर अपने इस बेटे को देखकर ही बेहोश हो गये थे और इस विषय में कुछ कहने से इनकार कर दिया था। आत्मघाती लड़का शायद अनुतप्त होकर मौत के बाद भी पिता के साथ-साथ घूम रहा था। और अन्त में उसका दाग भी दे गया।

रुपया चोर

प्रमथनाथ भट्टाचार्य शरत्चन्द्र के परम मित्र थे। प्रमथ बाबू के पुत्र पांचू गोपाल उन दिनों एक दैनिक पत्रिका के सहायक सम्पादक थे। वे अक्सर शरत्चन्द्र के घर आया जाया करते थे। एक दिन जाकर देखा कि शरत्चन्द्र कुछ लोगों से राजनीति पर बातचीत कर रहे हैं। साम्प्रदायिक बँटवारे को लेकर कांग्रेस से जो इस्तीफे की धूम मची हुई थी, उसी पर बातचीत हो रही थी।

शरत्चन्द्र ने कहा—पंडित मदन मोहन मालवीय इतने दिनों के बाद एक बड़ी भारी गलती कर बैठे हैं। कांग्रेस ने अगर साम्प्रदायिक बँटवारे के मामले में भूल ही की है तो क्या कांग्रेस के अन्दर रह कर उस भूल को सुधारा नहीं जा सकता था? कांग्रेस से इस्तीफा देकर मालवीय जी ने जो रास्ता चुना है उससे तो कांग्रेस कमजोर हो जायगी। यद्यपि कांग्रेस से अलग रह कर साम्प्रदायिक बँटवारे में रद्दोबदल की चेष्टा कभी भी सफल नहीं होगी। इस हालत में नैशनलिस्ट पार्टी बनाने की सार्थकता क्या है?

पाँचू गोपाल बाबू पत्रकार थे। शरत्चन्द्र के मुँह से ऐसी बातें सुनकर पूछा—आपके इस अभिमत को क्या मैं अखबार में दे सकता हूँ?

शरत्चन्द्र ने कहा—देना चाहते हो तो दे सकते हो, मुझे आपत्ति नहीं है। मगर लिखकर मुझे दिखा लेना।

अगले दिन पांचू गोपाल बाबू समाचार का एक मसविदा बना कर

पहुँचे। शरत्चन्द्र को वह उतना पसन्द नहीं आया। बोले—मालवीय जी से मैं हृदय से श्रद्धा करता हूँ, यही बात तुम्हारे मसविदे में कहीं स्पष्ट नहीं हुई है। देखो, माननीय व्यक्तियों के कामों की आलोचना करने में कोई हानि नहीं, मगर जो कुछ कहा जाय उससे श्रद्धा का अभाव नहीं प्रकट होना चाहिये। मसविदे को तुम रख जाओ, मैं ठीक से लिख कर भेज दूँगा।

आलोचना करने में क्षति नहीं, मगर आलोचना करते समय अश्रद्धा करनी होगी; इस बात के कोई माने नहीं होते। यही देखो न, मेरी रचनाओं की जो लोग आलोचना करते हैं, उनमें क्या रहता है? केवल गाली-गलौज और विषोद्गार। जब पहले-पहल मैं साहित्य क्षेत्र में आया, उन दिनों इनका आक्रमण और भी तीव्र था। उस जमाने में मेरे पिछले जीवन के बारे में न जाने कितनी बेसिर पैर की गवेषणाएँ इन लोगों ने कीं।

एक बार शरत् चटर्जी नाम का एक आदमी रुपया चुराने के जुर्म में पकड़ा गया। खबर के अखबारों में निकलते ही, उन लोगों ने समझ लिया कि रुपया चोर शरत् चटर्जी मेरे सिवा दूसरा कोई नहीं है। प्रचार कर दिया, यह रुपया चोर और उपन्यास लेखक शरत् चटर्जी दोनों एक ही व्यक्ति हैं। इसमें गलती की कोई गुञ्जाइश नहीं।

चारों ओर से चिट्ठियाँ आने लगीं, भाषा और वक्तव्य का क्या बयान करूँ। मेरी हालत की जरा कल्पना करो।

इस तरह के अन्याय अत्याचार मेरे ऊपर हुए हैं। लेकिन मैं टस से मस नहीं हुआ। आक्रमण चाहे जितना भी तीखा हो, खुद जिस बात को सच समझा है, उसे कहते कभी तनिक भी नहीं डरा।

सतीत्व और नारीत्व

मेदिनी पुर शहर के बेलीहाल पबलिक लाईब्रेरी का नया नाम राजनारायण वसु स्मृति पाठागार रखा गया है, इस पाठागार की ओर से हर साल मेदिनी पुर पाठागार सम्मेलन होता था। जिले के करीब सभी पाठागारों, वाचनालयों के प्रतिनिधि इस सम्मेलन में सम्मिलित होते थे।

१२ फाल्गुन १३३२ को इस सम्मेलन के दूसरे अधिवेशन में सभापति का आसन शरत्चन्द्र ने ग्रहण किया। स्वागत समिति के सभापति थे नाड़ाजोल के छोटे कुमार विजय कृष्ण खाना, शरत्चन्द्र इन्हीं के मेहमान थे।

सम्मेलन समाप्त होने के अगले दिन विजय कृष्ण के मकान पर एक छोटी सी साहित्य गोष्ठी का आयोजन किया गया। मेदिनी पुर शहर के बहुतेरे प्रतिष्ठित व्यक्ति वहाँ उपस्थित थे। विचार विमर्श का विषय था, साहित्य, विशेष करके शरत् साहित्य।

किसी ने प्रश्न किया, अच्छा शरत् बाबू सतीत्व ही तो नारीत्व है। आपने इन दोनों में अन्तर क्यों किया है?

शरत्चन्द्र बोले—इस प्रश्न के उत्तर में आप लोगों को एक कहानी सुनानी पड़ेगी। तो, कहता हूँ सुनिये। हमारे गाँव में एक बाल विधवा रहती थी। गाँव के नाते वे हमारी बड़ी बहन लगती थीं। ब्याह के थोड़े ही दिनों के बाद उनके पति मर गये। विधवा के वेश

में बहन नैहर लौट आई। भाई-बहन कोई नहीं था केवल माँ-बाप थे। बहन के विधवा होने के साल पूरे नहीं हुए थे कि बाप अचानक मर गये। इसके बाद बहन की उम्र जब तीस-बत्तीस की होगी उसी समय उनकी माँ भी मर गई। तभी से वे घर में अकेली ही रहती थीं।

उनके पास रहने के लिये मिट्टी का एक ही घर था, चारों ओर से ऊँची दीवार से घिरा हुआ था। आने-जाने के लिये आँगन के एक ओर एक ही दरवाजा था। शाम होते ही दरवाजा अन्दर से बन्द हो जाता था।

गाँव में एक भी ऐसा परिवार नहीं था जहाँ बहन की खातिरदारी और प्यार का कोई अभाव हो। इसका कारण भी था। लोगों के रोग-शोक में खाना-पीना भूल कर बहन जी जान से सेवा करती थीं। काज-प्रयोजन पड़ने पर उनसे ज्यादा मेहनत करने वाला दूसरा कोई नहीं दिखाई पड़ता था। गाँव में ऐसा एक भी घर नहीं था जो बहन के उपकार और सहायता के बोझ से न दबा हो।

तब मैं लड़का ही था। तरह-तरह की शैतानी में दिन कटते थे। एक दिन मुझे एक खुराफात सूझी बहन को डरवाना चाहिये। घर में वे अकेली रहती हैं, डर दिखाने का ऐसा अच्छा मौका कहीं मिलेगा?

मेरे सोचने और करने में देर नहीं लगती थी। मैंने उसी रात को कुछ कर जाने की ठानी।

मैंने तै किया कि बहन की चहार दीवारी से लगा हुआ जो जामुन का पेड़ है, शाम के अँधेरे में उस पर चढ़ कर भूत की बोली बोलकर बहन को इस तरह डरवाना होगा कि वे जिन्दगी भर याद रक्खेंगी।

यथासमय चुपचाप पेड़ पर जा बैठा।

पेड़ पर से बहन का घर साफ दिखाई पड़ता था। मौका देखकर

न किया कर जैसे ही बोला बं-हं-नं वैसे ही देखा कि एक आदमी बहन की खाट से झट से उतर कर उसके नीचे जा छिपा।

यह दृश्य मैंने अपनी आँखों से देखा। इसके बाद बहन के बारे में मेरी क्या धारणा होनी चाहिये?

हो सकता है कि, बहन में सतीत्व नाम की कोई चीज नहीं है, इस बात को माने ही लेता हूँ। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि इसके साथ ही उनका नारीत्व भी लुप्त हो गया। इन्सान के रोग-शोक में रात-दिन सेवा करके, दीन दुखियों को हाथों दान देकर सारी जिन्दगी उन्होंने जिस महानता का परिचय दिया था, उसका क्या कोई स्वतन्त्र मूल्य निर्धारित नहीं किया जायगा? नारी का शरीर ही क्या सब कुछ है उसका अन्तर क्या कुछ भी नहीं है? यह बाल-विधवा जवानी की दुसह ताड़ना से अपनी देह को पवित्र नहीं रख पाई थी, तो क्या उसके अन्तर के सारे गुण झूठे पड़ जायँगे? हमारी कोई भी श्रद्धा उन्हें नहीं मिलेगी? मनुष्य का सच्चा रूप हमें किस बात में मिलता है? उसके देह के आवरण से या उसके अन्तर के आचरण से, आप ही बतायें?

इसीलिए सतीत्व, और नारीत्व को मैं पृथक दिखाने के लिये बाध्य हुआ हूँ।

चिट्ठी

शरत्चन्द्र ढाका गये हुये थे। ढाका विश्वविद्यालय उन्हें डाक्टर आव् लिटरेचर की उपाधि देने जा रहा था। इष्ट मित्र सभी के घरों में उन्हें आतिथ्य ग्रहण करना पड़ रहा था।

उस रात को शरत्चन्द्र डा० रमेशचन्द्र मजुमदार के मेहमान थे। भोजन के बाद बैठक में बात-चीत हो रही थी। बहुत से लोग जमा थे। लोग उनसे तरह-तरह के प्रश्न पूछ रहे थे। शरत्चन्द्र हँसते हुये जवाब देते जा रहे थे।

इसी समय अष्टम एडवर्ड ने प्रेम के लिये सिंहासन को लात मार दिया था। बात-चीत के सिलसिले में किसी ने इस प्रसङ्ग को उठाया। शरत्चन्द्र से प्रश्न किया इस विषय में आपकी क्या राय है, बताइये?

शरत्चन्द्र ने कहा—देखो, अष्टम एडवर्ड की बात सुनकर मुझे अपने जीवन की एक घटना याद आती है। अष्टम एडवर्ड की तरह मैं भी एक बार बड़ी मुसीबत में पड़ गया था।

रोज मेरे पास बहुतेरी चिट्ठियाँ आती हैं। एक दिन एक नये किस्म की चिट्ठी मिली। राजशाही जिले की किसी जगह से एक भद्र महिला ने लिखी थी। उनका कहना था, कि मेरी किताबें उन्हें बहुत अच्छी लगती हैं। खास करके स्त्रियों के बारे में मेरे उदार विचारों के कारण ही वे मुझसे श्रद्धा करती हैं। मेरी किताबें बारम्बार पढ़ने पर भी उनका जी नहीं भरता है। वे इतनी मुग्ध हुई हैं कि मुझे देखना चाहती हैं।

यह मुलाकात कब, कहाँ, और किस तरह से होगी चिट्ठी में यही जानना चाहा। सम्मति मिलने पर वे उतनी दूरी से मुझसे मिलने के लिए कलकत्ता आएँगी। मेरे जवाब के लिए वे बेचैनी से प्रतीक्षा कर रही हैं।

चिट्ठी पाकर कुछ खुशी न हुई हो ऐसी बात नहीं। बताओ किताब अच्छी लगी है इस बात को जानकर किसे खुशी नहीं होती? जो भी हो, धन्यवाद देते हुये महिला को जवाब लिख दिया। यह भी लिख दिया कि मुझमें देखने लायक कोई चीज नहीं है, बल्कि न देखना ही अच्छा है। क्योंकि मुझ पर जो श्रद्धा उनमें अभी तक है, देखने पर उसके काफूर हो जाने की सम्भावना है।

कुछ दिनों के बाद भद्र महिला की एक चिट्ठी आ पहुँची। लिफाफे में एक काफी लम्बा प्रेम-पत्र था।

प्रेम-पत्र का मतलब यह है कि उन्होंने सीधे मेरे निकट आत्म-निवेदन किया है। लिखा है, आपके प्रति अपने इस गहरे प्रेम का क्या कोई भी प्रतिदान मुझे नहीं मिलेगा? आप क्या इतने निठुर होंगे? अभी उस दिन एक साधारण स्त्री के प्रेम के लिए सम्राट् एडवर्ड ने अपने सारे संसार में फैले राजपाट को छोड़ दिया और नारियों के हामी होकर नारी के अन्तर की वेदना को इतनी गहराई से जानकर आप क्या मेरी उपेक्षा करेंगे?

नारियों का हामी होने के खतरे को जरा देखो।

श्रोताओं में से एक ने पूछा—इसके बाद फिर क्या था? सौभाग्य की ही बात है कि चिट्ठी की बात बड़ी बहू को नहीं मालूम हुई। मालूम होती तो वे क्या सोचतीं कौन जाने!

एक ने चुटकी लेते हुए कहा—राजी हो गये होते तो बुरा नहीं रहता,

कुलीन ब्राह्मणों में तो इस तरह एकाधिक हुआ ही करता है। इसमें दोष कौन सा है।

शरत्चन्द्र ने कहा—भई, अब वह उम्र थोड़े ही है और कुछ दिन पहले इस तरह की चिट्ठी आई होती तो कुछ किया जाता।

भद्र महिला को जवाब में कुछ तो लिखा ही होगा?

जवाब क्या लिखता। चुप रह गया। और सुनकर आश्वस्त होगे कि आखिरकार वे सचमुच कलकत्ता आ ही पहुँचीं।

———

प्यार की गहराई

कलकत्ते के बालीगंज में कवि दम्पति नरेन्द्रदेव और राधारानी देवी के यहाँ शरत्चन्द्र अक्सर जाया करते थे।

एक दिन एक स्त्रैण सज्जन के गहरे प्यार की बात उठते ही शरत्-चन्द्र बोले—अरे, रहने भी दो, इन गहरे प्रेम की बातों को। उनके बारे में अधिक कहने की जरूरत नहीं। बहुतों को तो देखा, इस तरह के प्यार की गहराइयों को मैं अच्छी तरह जानता हूँ। सुनो, एक आंचलधर की कहानी सुनाता हूँ।

रंगून में मेरा एक खास दोस्त मेरे मकान के पास ही रहता था। दोस्त विवाहित थे, उनकी स्त्री भी काफी सुन्दर थी। इसके अलावा दोनों ही की उम्र कम थी, अतएव जवानी की कमी नहीं थी। बड़े सुख से उनके दिन बीत रहे थे। एक दूसरे को छोड़कर अधिक समय तक नहीं रह सकता था। उन्हें अभिन्न हृदय कहा जा सकता है।

इसी तरह काफी दिन बीते। इसके बाद अनाचक मित्र-पत्नी बीमार पड़ी। आस-पास नाते रिश्ते का कोई न होने के कारण सेवा-टहल की कुछ जिम्मेदारी मेरे ऊपर आ पड़ी थी। कितनी ही रातें उन्हीं के यहाँ गुजार देता।

बड़े डाक्टर बुलाये गए, बड़े वैद्य भी आये, लेकिन बीमारी में कोई फर्क नहीं पड़ा। रोगी की हालत निरन्तर खराब होती गई।

मेरे मित्र बीमारी को लेकर मेरे सामने रोते-पीटते थे। मेरे दोनों

हाथों को पकड़ कर कहते—भाई, जैसे भी हो तुम लोग उसे बचाओ। उसे छोड़कर मैं क्षण भर भी जिन्दा नहीं रह सकूँगा। उसने आँखें मूँद लीं तो मेरे लिए भी चारों ओर अँधेरा छा जायगा। वह गई तो मुझे भी जाना होगा इस बात को तुम जान लो।

इस तरह की बातें मुझे रोज सुननी पड़ती थीं। मैं भी यथासाध्य सान्त्वना देने की चेष्टा करता। लेकिन नतीजा कुछ भी नहीं निकला। एक दिन रात के ग्यारह बजे बन्धुपत्नी प्राणनाथ को छोड़कर स्वर्ग सिधार गईं।

मैं भी बड़ी मुसीबत में पड़ा। मित्र को सँभालना कठिन हो गया। मृत पत्नी से लिपट कर वह न जाने कितना फूट-फूट कर रोये। शोक मे वे प्रायः पागल हो गए।

इन सारी बातों को देखकर मैंने सोचा—हजार रात हो अर्थी इसी रात को निकालनी होगी, नहीं तो उसे अलग नहीं किया जा सकेगा, उसका रोना-धोना भी बन्द नहीं किया जा सकेगा।

मित्र को बुलाकर कहा—देखो, मैं थोड़ी देर में आ रहा हूँ। कुछ आदमियों की जरूरत होगी, मैं जाकर उन्हें बुला लाऊँ।

इस बात को सुनकर मित्र चुप हो गए। उनका चेहरा बदलने लगा। जिस मुखमण्डल पर अभी थोड़ी देर पहले तक शोक के चिन्ह के सिवा और कुछ नहीं था, वही अब भय से पीला पड़ने लगा।

दौड़कर उसने मेरे दोनों हाथों को पकड़ लिया। बोला—दोहाई भाई, इस सुनसान रात में, इस लाश के पास मुझे अकेला मत छोड़ जाओ, नहीं तो मेरा हार्ट फेल कर जायगा।

अब मेरे लिए अपनी झुँझलाहट को दबा रखना सम्भव नहीं था। बोला—अभी थोड़ी देर पहले तुम उन्हें किसी भी हालत में छोड़ने के

लिए तैयार नहीं थे। कह रहे थे, उन्हें छोड़कर तुम क्षण भर भी जिन्दा नहीं रह सकोगे। तुम उनसे न जाने कितना प्यार करते थे। इतनी ही देर में कुछ सब काफूर हो गया। मेरे न रहने पर थोड़ी देर उनके पास बैठे रहने में भी डर लग रहा है।

कौन किसकी बात सुनता? मित्र व्याकुल होकर कहते जा रहे थे ऐसा नहीं हो सकता भाई साहब, तुम मुझे अकेले छोड़कर हर्गिज न जाओ। गए तो लौटकर देखोगे कि तुम्हारा मित्र इस लोक में नहीं है, मैं बेहोश पड़ा हूँ, वगैरह।

जरा रुककर शरत्चन्द्र ने कहा—यहीं कहानी खतम नहीं होती है, याद है दो महीने बाद एक रंगीन चिट्ठी मिली। बन्धुवर के ब्याह का निमन्त्रण पत्र।

———

रोहिनी और नीरू दीदी

ढाका विश्वविद्यालय से डी० लिट्० की उपाधि लेने शरत्चन्द्र ढाका गये हुए थे। ढाका में शरत्चन्द्र के इष्ट-मित्रों की कमी नहीं थी। बहुतों के घर एक दो दिन की वे मेहमानदारी भी कर रहे थे। जिस दिन की बात कह रहा हूँ उस दिन वे अध्यापक चारुचन्द्र बन्दोपाध्याय के अतिथि थे।

मोहितलाल मजुमदार भी उन दिनों ढाका विश्वविद्यालय में बंगला साहित्य के अध्यापक थे। उस दिन सबेरे मोहितलाल अपनी हाल ही में प्रकाशित एक आलोचना पुस्तक शरत्चन्द्र को भेंट करने आये थे।

किताब हाथ में लेकर शरत्चन्द्र पन्ने उलटने लगे। मोहित लाल ने जहाँ शरत्चन्द्र के बारे में लिखा था, वहाँ की दो चार पंक्तियाँ पढ़कर शरत्चन्द्र बोल उठे, देखो मोहित, लोग कहते हैं कि मैं बंकिमचन्द्र को अनुरागी नहीं हूँ। कहा जाता है कि बंकिमचन्द्र के प्रति मेरा एक व्यक्तिगत विद्वेष है।

मोहितलाल ने कहा—बंकिमचन्द्र के उपन्यास के बारे में आपकी व्यक्तिगत धारणा मैं भी जानना चाहता हूँ। दिल खोल कर अपना स्वतंत्र मत आप दीजिये। इस बात को मैं जानता हूँ कि, बंकिमचन्द्र के उपन्यासों में नारी चरित्र के सृजन में कवि कल्पना की जो धर्म भ्रष्टता है, उसके एक बड़े उदाहरण के रूप में आप कृष्णकान्त के वसीयत-

नामे में, बंकिमचन्द्र ने रोहिणी का परिणाम जिस प्रकार से चित्रित किया है, उसका उल्लेख किया करते हैं।

शरत्चन्द्र ने जवाब दिया—देखो, जीवन के सत्य का, कोई कितना भी बड़ा कवि क्यों न हो, लंघन नहीं कर सकता। नारी के सम्बन्ध में जो धारणा हमारे समाज में संस्कार की तरह बद्धमूल हो गई है वह कितनी बड़ी झूठ है, इसे मैं जानता हूँ और इसीलिए किसी कवि की रचना में दायित्वहीन कल्पना का अविचार मुझसे नहीं सहा जाता है। धर्म और जाति शास्त्र के अनुरोध से मनुष्य के जीवन को तुच्छ दिखाना होगा नारी के जीवन में जो सबसे बड़ी ट्रैजैडी है, उसी को एक कुत्सित कलंक के रूप में प्रकट करना होगा इसमें कवि प्राण की महत्ता या कवि-कल्पना का गौरव कहाँ है ? हमारे समाज में जो दारुण अन्याय निरन्तर हो रहा है, साहित्य में भी अगर उसी की पुनरावृत्ति देखें तो मनुष्य के रूप में मनुष्य का मूल्य स्वीकार करने के सम्बन्ध में निराश होना पड़ता है। बंकिमचन्द्र के हाथों जब रोहिणी की दुर्गति की बात सोचता हूँ तो मुझे नीरू दीदी की बात याद आ जाती है।

नीरू दीदी ब्राह्मण की बेटी थीं, बाल विधवा। बत्तीस साल की उम्र तक कोई कलंक उनके चरित्र को छू भी नहीं सका था। सुशीला, परोपकारिणी, धर्मशीला और कर्मठ होने के नाते उनका बड़ा नाम था। रोग में सेवा, दुख में सान्त्वना, अभाव में सहायता, यहाँ तक कि आवश्यकता पड़ने पर महरी की भाँति परिचर्या न पाया हो ऐसा गाँव का एक भी घर नहीं था। मैं तब बच्चा था फिर भी उसी उम्र में नीरू दीदी जैसे महान हृदय का परिचय पाकर मुग्ध हो गया था।

इसी नीरू दीदी का बत्तीस वर्ष की उम्र में अचानक एक बार पद-

स्खलन हुआ। गाँव के स्टेशन का परदेशी मास्टर नीरू दीदी का जीवन कलंकित करके पाखंड की तरह भाग खड़ा हुआ।

ऐसे मामलों से समाज में जो कुछ हुआ करता है, नीरू दीदी के भाग्य में भी उसका अन्यथा नहीं हुआ। पहले सारे उपकार, सेवा-टहल सब कुछ को भूल कर गाँव के सभी लोगों ने बड़ी हृदयहीनता के साथ उनका बहिष्कार कर दिया। यहाँ तक कि उनसे बोलना-चालना भी बन्द कर दिया।

लज्जा, अपमान, आत्मग्लानि से कुछ ही दिनों के अन्दर नीरू दीदी का स्वास्थ्य बिल्कुल चौपट हो गया। उनकी हालत अब तब हो गई। उनकी उस मुमूर्षु हालत में भी कोई उनके मुँह में एक बूँद पानी देने के लिए भी आगे नहीं बढ़ा, उनके दरवाजे की ओर झाँका तक नहीं।

हमारे घर में भी कड़ा हुक्म था। नीरू दीदी के पास जाया नहीं जा सकता था। लेकिन मैं रात को छिप कर नीरू दीदी को देखने जाया करता था। जाकर हाथ-पैर सहला दिया करता था। कहीं से दो एक फल लाकर खिला आया करता था। तब देखा कि उस हालत में भी गाँव के लोगों के हाथों इस प्रकार का पैशाचिक दण्ड पाकर भी नीरू दीदी कभी किसी के खिलाफ कोई शिकायत नहीं करती थीं। उनकी अपनी लज्जा का ही पारावार नहीं था। जो अपराध उन्होंने किया है, वह दण्ड मानों उसके मुकाबले में अत्यधिक नहीं हुआ है। तब बात विचित्र लगती थी। लेकिन बाद में समझा कि अपने अपराध का दण्ड उन्होंने अपने को आप ही दे रखा है, गाँव के लोग उपलक्ष मात्र हैं। गाँव के लोगों को उन्होंने माफ कर दिया था, लेकिन अपने को नहीं।

उनके दण्ड का अन्त यहीं हुआ हो ऐसा नहीं। जब वे मरीं तो गाँव के किसी ने भी उनकी लाश को नहीं छूआ। लाश डोम से नदी के

किनारे जंगल में फिकवा दी गई। स्यार कुत्तों ने उस लाश को नोच नोच कर खाया।

शरत्‌चन्द्र का गला भर आया था। कहानी खत्म करके कुछ देर तक चुप बैठे रहे। फिर धीरे-धीरे बोले—मनुष्य में जो देवता है, इसी तरह से हम उसका अपमान करते हैं। रोहिनी का कलंक और उसकी सजा इसी तरह की है। एक ऐसे नारी-चरित्र की न जाने कितनी दुर्गति बंकिमचन्द्र ने की है।

———

साँप का जहर

हावड़ा जिले में युगकल्याण नाम का एक बड़ा गाँव है। एक जमाने में इस गाँव के युवक हर साल कोजागरी पूर्णिमा के दिन पूर्णिमा सम्मेलन करते थे। सम्मेलन में एक नाटक के अभिनय का आयोजन भी किया जाता था। उस बार १६३१ में रवीन्द्र नाथ का 'वैकुण्ठ का खाता' खेलना तय हुआ। सभापतित्व करने के लिए शरत्-चन्द्र को निमंत्रित किया गया।

युगकल्याण सामताबेड़ से करीब दस मील है। सम्मेलन के दिन दोपहर के बाद छः-सात साल की भतीजी को लेकर शरत्चन्द्र रवाना हुए। घर से देउलटी से कटक रोड तक तीन मील पालकी में आये। इसके बाद मोटर से बागनान होते हुए युगकल्याण पहुँचे।

ठीक समय पर अभिनय शुरू हुआ। शरत्चन्द्र उसी रात को घर लौटने वाले थे, इसीलिए ऐसी व्यवस्था की गई थी कि उन्हें देर न होने पावे। लेकिन अभिनय समाप्त होने के पहिले ही शरत्चन्द्र की भतीजी अचानक घर लौटने के लिए जिद्द करने लगी। शरत्चन्द्र को भी मानो होश आया, रात बहुत हो गयी है, इस छोटी बच्ची को साथ लेकर इतनी दूरी तय करके घर लौटना होगा, अब तो देरी नहीं की जा सकती।

आयोजन-कर्त्ताओं ने बहुतेरा समझाया, अब बहुत थोड़ा ही बाकी है। और थोड़ा सा रुक जायँ।

शरत्चन्द्र ने कहा—नहीं भाई, नहीं। इसी रात को इतनी दूर लौटना होगा, साथ में नन्हीं सी बच्ची है, अब कैसे रुकूँ, तुम्हीं लोग बताओ? तुम्हारा ड्राइवर कहाँ गया उसे बुलाओ तो, फौरन हमें देउलटी पहुँचा आये।

युवकों ने कहा ड्राइवर अभी आ जायगा। उसे बुलाने के लिए आदमी भेजा है।

ड्राइवर जरा दूर रहता था, उसे आने में देर लगी। शरत्चन्द्र से अब विलम्ब नहीं सहा जा रहा था, वे बेचैन हो उठे। बारम्बार ड्राइवर के बारे में पूछताछ करने लगे। उलाहने के स्वर में बोले यह मुझे पहले ही से मालूम था। मैंने देखा है लाते वक्त लोगों में जितना आग्रह रहता है, पहुँचाते वक्त यह बात वैसी नहीं देखी जाती है।

थोड़ी देर में गाड़ी आ गई। जब शरत्चन्द्र देउलटी पहुँचे तो रात के दस बज चुके थे। वहाँ उनके लिए पालकी तैयार थी। घर पहुँचने में काफी रात हो गई।

अगले दिन सबेरे ही युगकल्याण से दो युवक हाजिर हुए। शरत्चन्द्र को प्रणाम करके बोले, सुना है कि ठीक वक्त पर मोटर न आने के कारण आप हमसे असन्तुष्ट हुए हैं। हम लोगों से बड़ी खता हो गई है, हम आपसे माफी माँगने आये हैं।

शरत्चन्द्र ने कहा देखो भैया, गुस्सा थोड़ा सा नहीं आया था ऐसी बात नहीं लेकिन तुम लोगों से जैसा मिजाज लेकर निकला था, रास्ते में उसके लिए सजा भी कुछ कम नहीं मिली।

युवकों ने घबराकर पूछा—क्या हुआ। सजा कैसी? कुछ न पूछो। देउलटी आकर जब पालकी पर बैठा तब रात के करीब दस बज चुके थे। डाँड़-मेड़ लाँघते हुए जब आधे रास्ते पहुँचा तो एक घटना हुई।

हमारे श्रोड़िया कहारों में एक श्रचानक बाप रे मरा, कहकर चिल्ला उठा। उसके काँध अलग करते ही दूसरे कहारों ने भी डरकर पालकी कन्धे से उतार कर जमीन पर रख दी।

मामला क्या है देखने के लिए मैं फौरन बाहर आया। जो आदमी बाप रे मरा कहकर चिल्ला उठा था बोला—बाबूजी, मुझे बचाइए, मैं मरा बाबूजी, मुझे साँप ने काट लिया है। इतना कह वह फूट-फूट कर रोने लगा।

साँप काटने की बात सुनकर दूसरे कहार भी हाय-हाय करने लगे। मैं बड़े चक्कर में पड़ गया। सोचा अगर विषैले साँप ने काटा है तो फिर खैर नहीं। इतनी रात को इस बीच मैदान में अब क्या करना चाहिए, अब कहाँ किसके पास जाऊँ? आया था मेरी पालकी ढोने और बिना दवादारू के इस बीच मैदान में जान देगा।

कहारों के पास लालटेन थी। लालटेन लेकर देखा उसके पैर में किसी मामूली कीड़े ने काट खाया है सही में, लेकिन साँप काटने जैसा नहीं मालूम हुआ। पूछा साँप को देखा था।

उसने कहा—नहीं बाबूजी, साँप को नहीं देखा मगर साँप ही ने काटा है इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। उछल कर काट खाया बाबूजी। हाय, हाय, क्या होगा जी बाबू जी।

साँप को नहीं देखा है सुनकर मुझे इस बात में तनिक भी संदेह नहीं रहा कि उसे साँपने नहीं काटा है। उसके शरीर में जहर का कोई लक्षण भी नहीं दिखाई पड़ रहा था। मैं उसे समझा कर कहने लगा—नहीं, साँप ने नहीं काटा है, कोई कीड़ा मकोड़ा होगा, डरने की कोई बात नहीं।

वहाँ मेरी बात कौन सुनता? सभी एक साथ चिल्लाने और बोलने लगे, बाबूजी बचाइए, बाबूजी बचाइए।

मैं बड़े चक्कर में पड़ गया। समझ गया कि साँप ने नहीं काटा है, लेकिन वे बात को समझ नहीं रहे हैं। क्या किया जाय। इधर रात बढ़ती ही जा रही थी। एक तो बूढ़ा आदमी था, दूसरे साथ में छोटी, सी भतीजी थी। इतनी दूर पैदल कैसे जाया जाय? इसके अलावा कहारों को भी इस तरह छोड़कर कैसे जाऊँ? आखिरकार एक तरकीब सूझी। गंभीर होकर प्रवीण आदमी की तरह उनसे पूछा—क्यों, आज कौन-सी तिथि है?

एक स्वर में उन्होंने कबूल किया कि आज पूर्णिमा है।

अब मैंने बड़ी प्रसन्नता की मुद्रा बनाकर के कहा—तब तो कोई चिन्ता की बात नहीं। पूर्णिमा के दिन अगर जहरीला साँप भी काट ले तो वह जहर नहीं चढ़ता है, तुम लोग इतना भी नहीं जानते।

कहारों में सभी ने चिल्ल पों बन्द कर दी और एकटक मेरी ओर देखने लगे। मैंने कहा अरे,—इस बात को बच्चे भी जानते हैं, और तुम लोग नहीं जानते? अमावस और पूर्णिमासी के दिन साँप में विष नहीं रह जाता। चाहे कितना भी जहरीला साँप क्यों न हो। इन दोनों तिथियों को वे विषशून्य हो जाते हैं। लो, पालकी उठाओ। मैं बाभन हूँ, पोथी लिखकर खाता हूँ, पोथी-पत्रा देखते जिन्दगी गँवाई है। मेरी बात सुनकर देखो।

इतनी देर के बाद जान बचाई बाबूजी। कहकर कहारों ने चैन की साँस ली और पालकी कंधे पर लेकर ले उड़े। साँप के बखेड़े में बीच मैदान में एक घंटा खराब हुआ। जब घर लौटा तो रात के १२ बज चुके थे।

"नहीं, नहीं, मन में किसी तरह का संकोच मत रखो। भाग्य में थोड़ा-सा कष्ट लिखा था, उसे भोगना पड़ा। तुम लोग इसे कैसे टाल सकते थे?"

नौकर ने अन्दर से चाय लाकर दी। शरत्‌चन्द्र ने कहा—लो, चाय पियो।

निमन्त्रण

इतवार का दिन था। रसयुक्त श्रीगोष्ठी थी। सदस्यों में सभी अभी तक नहीं आये थे। इने-गिने ही आये थे। सामने शरत्चन्द्र और उनकी बगल में असमंज मुखोपाध्याय दिखाई पड़े। असमंज बाबू कुछ थके-थके से लग रहे थे। वे एक ओर ओठँग कर बैठ गए और शरत्-चन्द्र एक तकिया पर सर रखकर लेट गए।

दृश्य कुछ असाधारण-सा था। अपने घर के सिवा शरत्चन्द्र शायद ही कहीं लेटते थे। रसयुक्त के एक सदस्य ने कमरे में घुसते ही पूछा—यह क्या शरत् दादा, आप इस तरह लेटे हुए हैं।

अरे भाई कुछ मत पूछो। बड़ी मुसीबत में पड़ गया था। धूप में चक्कर काट रहा था। लगता है सिर में दर्द है। साथ ही असमंज बाबू बोल उठे—सर का कसूर क्या। दुनियाँ भर की झंझट। शरत्चन्द्र ने असमंज बाबू की ओर देख करके कहा—क्यों भाई असमंज, आखिर तुम्हें क्या हुआ।

अन्त बुरा नहीं रहा फिर भी दिन भर आपने कितना परेशान किया। कुछ कुतूहल से आगन्तुक सज्जन ने पूछा—मामला क्या है शरत् दादा ? असमंज से ही पूछो। वही बतलाएगा।

असमंज बाबू ने कहा मैं क्यों। अपनी कहानी आप ही कहिए। लो, मैं सुनाता हूँ। शरत्चन्द्र फिर तकिया के सहारे बैठ गए।

देखो, पिछले इतवार की शाम को असमंज हमारे यहाँ आया।

वह जब चला जा रहा था तो अचानक मुझे याद आया कि असमंज ने मेरे यहाँ बहुत दिनों से खाना नहीं खाया है। अगले इतवार को दोपहर को उसे बुला कर खिलाना चाहिए। यह सोच कर उससे कहा—असमंज, तुमने तो कई दिनों से मेरे यहाँ पत्तल नहीं बिछाया। अगले इतवार को तुम्हारा नेवता रहा। क्यों, आओगे न?

असमंज सानन्द निमन्त्रण स्वीकार कर चला गया।

आज दोपहर के कुछ पहले असमंज यथासमय आया। उसे खाने के लिए बुलाया है इस बात को मैं बिलकुल भूल ही गया। असमंज जब मेरे घर पहुँचा उस समय मैं बैठकखाने में तम्बाकू के कश खींच रहा था। उसे असमय आते देख मुझे कुछ अचरज-सा हुआ। बोला—अरे, असमंज तुम! आओ, आओ। अचानक इस दोपहरी में कैसे आए भाई? कोई खास काम तो नहीं है?

शरत्चन्द्र के श्रोता बेचैनी के साथ असमंज की हालत की कल्पना करके हँस पड़े।

असमंज बाबू ने कहा आप लोग हँस सकते हैं। लेकिन मुझे उस समय तनिक भी हँसी नहीं आ रही थी।

शरत्चन्द्र बोले छोड़ो इन बातों को आगे का हाल सुनो। असमंज कुछ नहीं बोल रहा था मेरी ओर एकटक देखता रहा। मैंने सोचा उसे शायद मालूम नहीं है कि इतनी बेला हो गई है। अचानक एक और बात याद आते ही बोला भाई तुम आ गए अच्छा ही हुआ! मेरे साथ एक जगह चलो। आज वहाँ अच्छी दावत है। मुझसे तो खाया-वाया नहीं जाता जानते ही हो, फिर भी बार-बार कह गया है, तो जाना ही होगा। देखो, तुम्हारे लिए संकोच की बात नहीं है। मैंने उन लोगों से कह ही दिया है कि मैं कहीं अकेला नहीं जाता। यार दोस्त कोई

मिल गया तो साथ लाऊँगा। वे खुशी से कह गए हैं कि आप जितनों को चाहिये लाइए। इससे बल्कि उन्हें खुशी ही होगी। कुछ पूछो मत भाई बड़ी भारी तैयारी थी। कम्पनी बाग में उन लोगों ने पिकनिक का आयोजन किया है। चलो देरी मत करो। यूँ ही देर हो गई है। इतनी देर तक कोई संगी नहीं मिल रहा था। इसीलिए जाने के बारे में कुछ तै नहीं कर पा रहा था। भाग्य से जब तुम आ ही गए तो चलो घूम ही आयें।

असमंज राजी हो गया। हम कम्पनी बाग के लिये रवाना हुए। उसने उस वक्त जरा अकल खर्च करके मेरे यहाँ अपने न्योते की बात कही होती तो हम इस परेशानी से बच जाते। लेकिन उसने चूँ तक नहीं किया। शायद उसने सोचा होगा शरत् दादा कौन ऐसा राज भोग खिला देंगे, इससे कहीं अच्छा है कि कम्पनी बाग के आयोजन में ही हो आया जाय। इसके अलावा इसी बहाने गङ्गा के किनारे थोड़ी सी ताजी हवा भी मिल जायगी। असमंज बड़ा बुद्धिमान लड़का है, उसने लक्ष्मण की तरह मेरा अनुगमन किया।

असमंज बाबू ने कहा हरगिज नहीं। मैंने जब देखा कि आप के यहाँ मेरे लिए खाना नहीं बना है, तो गङ्गा पार के सम्भाव्य को न ठुकराने में कई सुविधाएँ हैं पहली बात है, आपको परेशानी में डालने से छुटकारा पाऊँगा। और दूसरी बात कि, आज एकादशी नहीं है।

शरत्चन्द्र ने रोकते हुए कहा—रहने दो, आगे बोलने की जरूरत नहीं। फिर क्या हुआ सुनो। हम दोनों उस दोपहरी में बाग में जा पहुँचे। वहाँ जाकर देखा दावत देने वालों का कहीं पता नहीं। इधर-उधर भी कोई नहीं दिखाई पड़ा। असमंज से कहा—क्यों असमंज! न्योता देनेवाले तो दिखाई नहीं पड़ रहे हैं। उन्होंने तो कहा था कि

बाग में ही खाना बनेगा। तो क्या कोई नया इन्तजाम किया ? घर से या होटल से तो खाना नहीं ला रहे हैं ? चलो, तब तक उस दूकान में चलकर चाय पियें ! वे लोग आते ही होंगे। आज पहली अप्रैल तो है नहीं, कि बेवकूफ बनायेंगे। हमलोग दूकान में जा डटे ! असमंज के दिल में उल्लास नहीं दिखलाई पड़ रहा था। मैं बोला—देखो असमंज घबड़ाने की कोई बात नहीं। वे इसी रास्ते बाग में आएँगे। हम यहाँ बैठे हुए हैं इसका पता आते ही उन्हें चल जायगा। तब तक धीरे-धीरे चाय की चुस्कियाँ ली जायँ। हमलोग तो आज उनके अतिथि हैं, चाय का दाम भी वे जरूर ही चुका देंगे, तुम देख लेना। वे लोग बड़े सज्जन हैं।

असमंजन ने कहा दादा चुश्कियाँ लेने से चाय ठंढी हो जायगी। वैसे चाय पीने से अच्छी लगेगी; देखिये खाना लेकर वे कब पहुँचते हैं।

एक कप चाय तो खत्म हुई। फिर दूसरा, तीसरा कप भी खतम हुआ तब तक किसी का पता नहीं चला। लाचार होकर बोला—असमंज, बताओ तो मामला क्या है; इतना कहकर जेब से निमन्त्रण पत्र निकाला। अच्छी तरह पढ़ देखा अब बना। बोला—अरे असमंज, मैं बड़ीभारी गलती कर बैठा हूँ। दावत इस इतवार को नहीं अगले इतवार को है ! यह देख चिट्ठी, कहकर जल्दी चिट्ठी बढ़ा दी।

असमंज ने चिट्ठी पढ़कर हँसते हुए कहा—दादा, आज यह आपकी पहली भूल नहीं है, एक और है। मैंने कहा वह क्या ? मैंने वह कौन-सी भूल की ?

असमंज बोला आपने आज दोपहर को मुझे नेवता दिया था। मैं बोला हाँ बात सही है। लेकिन तुम तो भाई घर मेरे कुछ बोले नहीं ?

अरे अगर मैं भूल ही गया था तो तुम्हें तो याद दिलाना चाहिए था। तुम तो मेरे कोई नए परिचित नहीं हो कि संकोच का सवाल उठता। असमंज बोले—मैंने देखा कि आपके भूल जाने पर भी जब एक दूसरा निमन्त्रण मिला है तो उस बात को उठाने से फायदा ही क्या।

पहले सोचा घर लौट जाऊँ। फिर लगा कि घर लौटने से फायदा क्या। चौका उठ चुका होगा। भूख भी जोरों की लगी थी। बेचारे असमंज की हालत बखूबी समझ रहा था। असमंज से कहा—चलो जल्दी से चल दें। किसी अच्छी दूकान पर चलें, भूख से पेट में चूहे उछल रहे हैं। इस बेला दूकान का खाना ही खाया जाय।

पास की एक दूकान में आकर हम लोगों ने भर पेट खाना खाया। और वहीं से तुम्हारे रसयुक्त में आ रहे हैं।

असमंज बाबू ने कहा आज दोपहर का खाना शरत् दादा की गलती की वजह से बेलुआ में मिल गया। असल नेवता इसकी वजह से मारा नहीं गया शरत् दादा ने अगले इतवार को खाने का न्योता दिया है। अब इस बार न भूलें तो बेड़ा पार हो।

शरत्चन्द्र ने कहा नहीं, जी नहीं अब डरने की कोई बात नहीं। इस बार गलती नहीं होगी।

श्रोताओं में से एक ने कहा—फिर भी असमंज अगले इतवार को शरत् दादा कम्पनी बाग में दावत खाने जायेंगे। चिट्ठी में तो यही बात लिखी है, बात ठीक है न!

शरत्चन्द बोले—माफ करो, आज बाग में कम नहीं टहला अब फिर नहीं जाऊँगा।

सास और बहू

सामता बेड़ की ही बात है। रोज की तरह उस दिन भी शाम को शरत्चन्द्र अपनी बड़ी बहन के घर घूमते-घामते पहुँचे।

उनके मुँह से कहानी सुनने के लोभ से टोले की महिलाएँ पहले ही से अनिला देवी के घर आकर जमा हुई थीं महिलाओं में एक ओर जिस तरह किशोरी तरुणी थीं, उसी तरह बहू-सास सभी थीं। घर के दो-एक पुरुष भी हैं, जो कुछ दूर बैठे हैं। एक बहू उस दिन अचानक फरमाइश कर बैठी—आपने तो स्त्रियों के बारे में न जाने कितनी बातें बड़ी सहानुभूति के साथ लिखी हैं। लेकिन वे निरीह बहुएँ बेचारी सासों द्वारा किस तरह सताई जाती हैं, इसके विषय में; तो आपने कुछ भी नहीं लिखा है। इस तरह की घटनाएँ तो बंगालियों के घरों में रोज ही होती रहती हैं। बहुओं पर यातना क्या इतना ही उपेक्षणीय विषय है? इस विषय में आप को कुछ कहना ही होगा।

शरत्चन्द्र ने कहा—ऐसी झगड़ालू सासें मेरी निगाह में कुछ कम नहीं आयी हैं। तो अच्छी बात है, आज तुम्हें झगड़ालू सास की ही कहानी सुनाऊँ।

कहने की आवश्यकता नहीं, इस बात को सुनकर सासें प्रसन्न नहीं हुईं। मुँह लटकाये बैठी रहीं। अनूढ़ा और बहुओं का दल बड़े आग्रह के साथ जरा सामने खिसक कर बैठा।

शरत्चन्द्र ने कहा—एक सच्ची घटना ही सुनाऊँ। यह मेरी अपनी आँखों देखी घटना है।

उन दिनों मैं शिवपुर में रहा करता था। मेरे आँगन के एक ओर ऊँची दीवार है। उस दीवार के उस पार मेरे एक पड़ोसी के घर में ऐसी ही एक सास थी। सुबह कहो शाम कहो—हमेशा अरी पूत खानेवाली की बेटी, अरी सत्यनाशी की बेटी बगैरह अनगिनत सम्बोधन उस घर से सुनाई पड़ते थे। अचरज की बात यह है कि सास की इतनी सुनता था, लेकिन बहू की आवाज कभी नहीं सुनता था।

कभी-कभी बैठा सोचा करता—ओह ऐसी गऊ बहू को कहीं कोई इस तरह गालियाँ देता है। बहू का पति भी कैसा आदमी है, मां को कभी मना भी नहीं करता। फिर सोचता—ऐसी मां क्या कभी बेटे की बात सुनेगी। बेटा कहीं कुछ कहने गया तो उसी को दस जली-कटी सुना देगी।

जो भी हो, बहू के लिये जिस तरह मेरे दिल में दया उत्पन्न होती थी उसी तरह उसके प्रति मेरी श्रद्धा भी दिन पर दिन बढ़ती जा रही थी। लगता था आज कल शायद ऐसी लक्ष्मी बहू लाख में एक भी नहीं मिलती होगी। अनर्गल गालियाँ सहती जा रही है। मुँह से चूँ तक नहीं करती। गृहस्थी का अपना काम भी करती जा रही है। यहाँ तक कि उस कर्कशा सास को भी रौंध राँध कर खिला रही है, उसकी सेवा-टहल कर रही है। ऐसी बहू को देखने से भी पुण्य होता है।

शरत्चन्द्र जब इस गऊ प्रताड़िता की कहानी सुना रहे थे, उस समय मजलिस की सासों और बहुओं के मुँह का भाव देखते ही बनता था। सासों के मुँह जिस तरह विषण्डथमान थे, बहुओं के मुँह उसी तरह तीक्ष्ण हास्य से उज्ज्वल थे। एक दल दूसरे दल का मुँह भी नहीं देख रहा था।

शरत्चन्द्र ने कहानी जारी रखी। एक दिन की बात है, अभी पौ

फटने ही वाला था। मैं आँगन में चहलकदमी कर रहा था। इसी समय पड़ोस के उस मकान की उस सास का गला खनखना उठा, अरी सत्यानाशिनी की बेटी, अरी बेटा खाने वाली की बेटी, वगैरह। तबीयत भिन्ना उठी। सबेरे उठते ही चर्खा चला दिया, फिर अकारण वही गाली-गलौज उस दिन उन्हें देखने के लिए मुझे बड़ा कुतूहल हुआ। इसलिए चहारदीवारी की ओर बढ़कर कुछ ईंटें एक पर एक रख कर उसपर खड़ा हो उस मकान की ओर मुँह बढ़ाया। मुँह बढ़ा कर जो कुछ देखा, उससे मेरी इतने दिनों की सारी धारणाएँ क्षण भर में काफूर हो गयीं। देखा, घर में तब तक शायद और कोई नहीं उठा था। केवल सास और बहू आँगन में दिखाई पड़ रही हैं। बुढ़िया बरामदे में बैठी है और बहू बगल में झाड़ू लगा रही है। वह मुँह से कुछ नहीं कह रही है सही में, लेकिन बीच-बीच में सास की ओर झाड़ू तान कर हाथ मुँह और आँखों के इशारे से उसे अच्छी तरह झाड़ू से बुखार उतार लेने की धमकियाँ दे रही है। कितनी तरह से कितनी भंगिमा से वह धमका रही है, उसका बयान मैं क्या करूँ। सास क्या करती रह-रह कर आग-बबूला हो रही है।

शरत्चन्द्र की कहानी खतम हुई। मजलिश में जितनी बहुएँ थीं उनका चेहरा स्याह हो गया और सासों ने हँसते हुए पान की गिलौरियाँ मुँह में डालीं।

चरखा

सन् १९३२ में कलकत्ते के श्याम मोहन लाइब्रेरी हाल में भारत-वर्ष सम्पादक जलधर सेन महाशय की सम्वर्धना सभा में शरत्चन्द्र सभापतित्व कर रहे थे। सभा में प्रवीण नवीन बहुतेरे साहित्यिक गण्य-मान व्यक्ति उपस्थित थे। शरत्चन्द्र के कहने पर गुरु सदयदत्त ने एक सुन्दर भाषण दिया।

सभा के समाप्त होने पर शरत्चन्द्र उस दिन घर नहीं लौटे। बेहाला के मणीन्द्रनाथ राय के मेहमान बने। अगले दिन सबेरे उनको केन्द्र करके राय के मकान पर बड़ी गोष्ठी शुरू हो गयी। चाय की चुस्कियों के साथ पिछले दिन की जलधर सम्वर्धना सभा पर बातचीत होने लगी। शरत्चन्द्र ने गुरुसदयदत्त के भाषण की खूब प्रशंसा की। गुरु सदय प्रसङ्ग के बाद गाँव सुधार, गाँवसुधार से चरखे का प्रसङ्ग आया।

किसी ने प्रश्न किया शरत् बाबू आपने कभी चरखा काता है।

शरत्चन्द्र बोले—अरे मेरे चरखा कातने का तो एक इतिहास ही है।

चरखा मैंने अकेले ही नहीं काता है, घर भर काता है। यहाँ तक कि नौकरों तक ने चरखा कातना सीख कर बड़े मजे में चकमा देना शुरू किया। अगर पूछता क्यों रे, अमुक काम क्यों नहीं किया। फौरन जवाब मिलता बाबूजी चरखा कात रहा था। चरखे का नाम लेने पर कुछ कहा नहीं जा सकता था, क्योंकि नौकर भी देश के उद्धार में

लग गए हैं। लगें, लेकिन सचमुच ही थोड़ा बहुत सूत कातते तो बात कुछ समझ में आती।

मेरे अपने जीवन में क्या कुछ कम तूफान आए हैं। देशबन्धु के पाले में तेल की बनी सड़ी फुलौड़ी, कचौड़ी निमकी, यहाँ तक कि भूने चने खा-खा कर गाँवों में चरखे के प्रचार के सिलसिले में कुछ कम नहीं घूमा हूँ। बहुधा तो वह भी नहीं मिलता था। चर्खा-चर्खा करके इतना अत्याचार न करता तो तन्दुरुस्ती शायद इतनी खराब न होती।

न जाने कितने खुराफात किए। इसी चरखे से ही आखिर में करघा भी बैठा गया था। सुरेन मामा ने एक दिन आकर कहा—शरत् केवल चरखे से काम नहीं बनेगा। करघा भी बैठाना होगा। बोला, ठीक ही कर रहे हो। फौरन करघा बैठाने के काम में जुट गया। भागलपुर में पाँच-सात करघे बैठाये। पेशगी रुपये देकर बंगाल से अच्छे अच्छे बुनकर बुलाये गए। कुछ दिन बीतते न बीतते यहाँ तक कि पेशगी के रुपये पटते न पटते उनके घरों से चिट्ठियाँ आने लगीं।

किसीका लड़का बीमार है, किसी की बीबी बीमार, किसी के यहाँ रुपये की कमी से इलाज भी नहीं हो पा रहा है अतएव रुपया दो। दिया भी।

फिर चिट्ठी आई। आदमी के कमी के कारण पका धान खेत में झड़ रहा है काटने को आदमी नहीं है अतएव चिट्ठी पाते ही चले जाओ। किसी की चिट्ठी आती—अमुक ने मुकदमा दायर किया है पैरवी के लिए चले आओ। नहीं तो सब मटियामेट हो जायगा। बुनकर चिट्ठियाँ लेकर हाजिर होते। हम मजबूर होकर राह खर्च और छुट्टी दे उन्हें घर भेजते। लेकिन छुट्टियाँ खतम होने पर भी वे नहीं लौटते। इधर करघाघर में दीमकों का उत्पात बढ़ता ही जाता—वे तो देशभक्त नहीं थे।

निराश होकर सुरेन मामा ने कहा—छोड़ो दूसरे के भरोसे यह काम नहीं चलने का। इससे अच्छा है कि चलो दियासलाई का कारखाना खोल दूँ। देश का काम भी होता है और पैसे भी आयेंगे। लेकिन अब बाहर के आदमी नहीं खुद सीखेंगे, खुद ही सब कुछ करेंगे। वफादार लड़कों को काम सिखलायें।

सुरेन मामा के उपदेशानुसार करघे को ताक पर रख दियासलाई का कारखाना चालू किया गया, लेकिन हिन्दुओं के लड़कों में कोई भी काम सीखने नहीं आया। अन्त में थोड़े से मुसलमान लड़के मिले। उन्होने कहा—हम काम सीखेंगे लेकिन हमें मजूरी देनी होगी। बहुत कह-सुनकर सुरेन मामा ने रोजाना चार आना मजदूरी तै कर दी।

सुरेन मामा ने मुझसे कहा—देश में शिक्षा की कमी है। नहीं तो क्या देश की ऐसी दुर्दशा नहीं होती।

जो भी हो, काम जोरों से चल निकला। इसी समय एक दिन अचानक बारूद में आग लग गयी। किसी का हाथ जला, किसी का पैर जला, किसी का मुँह जला, किसी का बदन जला और उसके साथ ही हमारा मुँह जला। यहीं हमारे सलाई के कारखाने की इति हो गई। बाहर मुँह दिखाने के डर से सुरेन मामा भागलपुर में ही मुँह छिपाये रहे। मैं सामता बेढ़ चला आया। व्यावहारिक रूप से देशोद्धार पर्व समाप्त हुआ।

इन्द्रनाथ

शरत्चन्द्र बचपन की कहानियाँ सुना रहे थे। कई साहित्य रसिक, मामा और बचपन के मित्र सुरेन्द्रनाथ बन्दोपाध्याय उपस्थित थे। श्रीकान्त के प्रसङ्ग में इन्द्रनाथ की बातचीत पड़ी थी। एक ने प्रश्न किया—अच्छा, इन्द्रनाथ नाम का कोई वास्तव जीवन में था क्या या यह चरित्र शरत्बाबू की कल्पना है?

शरत्चन्द्र बोले—नहीं, मनगढ़न्त नहीं है, इन्द्रनाथ सोलहों आने यथार्थ चरित्र है। भागलपुर में मामा के घर के पास रामरतन मजुमदार नाम के एक मशहूर इञ्जीनियर थे। रामरतन बाबू के एक लड़के का नाम था राजेन, हम उसे राजू कहकर पुकारते थे। यही राजू मेरे श्रीकान्त का इन्द्रनाथ है। राजू के बड़े भाई रायबहादुर सुरेन मजुमदार डिप्टी मजिस्ट्रेट थे। वे साहित्यिक और ऊँचे दर्जे के गवैया थे।

राजू अधिक लिखा पढ़ा नहीं था सही में, मगर उसमें अनन्त गुण थे। उस उम्र में उस तरह का ऊँचे आदर्श वाला आदमी मैंने जिन्दगी में नहीं देखा है। श्रीकान्त में इन्द्रनाथ का चरित्र अङ्कित करने में मुझे कल्पना का तनिक भी सहारा नहीं लेना पड़ा। राजू आदमी ही ऐसा था। उसकी बातें याद आते ही मेरा मन आज भी व्याकुल हो उठता है। आज जब उसकी बात उठी है तो उसी की दो एक कहानियाँ तुम्हें सुनाता हूँ।

राजू के घर के पास ही गङ्गा थी। गङ्गा के किनारे एक बहुत बड़ा

बड़ का पेड़ था। जगह अद्भुत थी, निर्जन थी। बड़ की एक डाल गङ्गा पर झुक गई थी। उसी डाल पर बाँस का मॉँचा बनाकर कनस्टर के टिन से घेर कर एक छोटा सा घर बनाया था। रोज तड़के उठकर उसका काम था उस घर में जाकर घंटे भर भगवान का ध्यान करना। सभी जानते थे कि यह राजू का ध्यान घर है। लेकिन इसमें घुसने की किसी को हिम्मत नहीं होती थी। हाँ, मेरी बात अलग थी राजू अक्सर मुझे अपने उस घर में ले जाता था। डाल पकड़ कर उस घर तक पहुँचना भी कोई हँसी ठट्ठा नहीं था।

एक दिन सबेरे ध्यान समाप्त कर राजू नदी के किनारे से घर लौट रहा था। बङ्गाली टोला घाट के पास पहुँच वह ठमक कर खड़ा हो गया। बात यह थी कि एक अधेड़ औरत घाट के एक ओर स्नान कर रही थी। वहीं एक अधेड़ हिन्दुस्तानी तैरना सीखने के बहाने हाथ पैर पटक कर औरत के बदन पर छींटे डाल रहा था। औरत असहाय थी, कुछ बोल नहीं पा रही थी। यह तमाशा देख राजू तड़ाक से नदी में कूद पड़ा। धोती के एक खूट का फन्दा बना कर रसिक प्रवर के गले में डाल दिया और एक झटके में उन्हें नदी के नीचे खींच ले गया। आदमी का दम फूलने लगा और राजू वन, टू, थ्री, फोर गिन चला। आदमी छटपटाने लगा। लेकिन राजू ने कोई ध्यान नहीं दिया। सौ तक गिन कर तब उसने उसे छोड़ा। छुटकारा पाकर ऊपर आकर वह हाँपने लगा। राजू ने उससे पूछा—फिर कभी करोगे।

दम लेने के बीच में वह बोला कभी नहीं हुजूर। कसूर माफ कीजिए।

तो भाग यहाँ से—कहकर राजू किनारे आया।

एक दिन की घटना है। शाम के बाद राजू टहलने निकला। बरारी

स्टेट हाई स्कूल के हेड पंडित राजू को देखते ही रो-रोकर कहने लगे—भैया राजू, मैं तो तुम्हीं को ढूँढ़ने निकला था भैया!

राजू बोला—बात क्या है पंडित जी आप रो क्यों रहे हैं? उत्तर में पंडित जी ने अपनी पीठ दिखाकर कहा—यह देखो न भैया, बात नहीं, चीत नहीं, पुलिस साहब ने कितनी बुरी तरह पीटा। जमींदार के यहाँ ट्यूशनी करके जा रहा था, रास्ते में पुलिस साहब से मुलाकात हो गई। साहब घोड़े पर सवार था। मैं जल्दी में एक तरफ हट कर खड़ा हो गया। साहब का मिजाज गरम था। गाली देकर बोला—रास्ते से दूर नहीं खड़ा हो सका। इतना कहकर कोड़े से उसने सड़ासड़ पीटा। फिर घोड़ा दौड़ाकर अपनी राह चला गया।

राजू बोला—अच्छा, मजा चिखाता हूँ। घोड़े पर सवार होकर साहब क्लब में बिलियर्ड खेलने गया है। लौटानी में मजा मालूम होगा। आप घर जाइये, पंडित जी, कल सुनियेगा, साहब की कैसी गति बनाई है। इतना कह पंडित जी से विदा हो राजू सीधे मेरे पास आया। देखा, दुबे गुस्से से उसका चेहरा तमतमाया हुआ है। मुझसे बोला—शरत् तू चल तो मेरे सङ्ग!

उस आदेश की अवहेलना करने की हिम्मत मुझमें नहीं थी। फिर भी डरते हुए बोला—तुम साहब को मारोगे राजू? उसकी कमर में हमेशा रिवालवर लटकती रहती है। और हम लोग ठहरे निहत्थे। इस बात को याद रखना।

राजू बोला—तू भाई चल भी तो। तमाशा वहीं देखना।

बस, इसके आगे बात नहीं हो सकती थी। मैं राजू के साथ चल पड़ा। पहले तो हम आदमपुर घाट पर पहुँचे। आदमपुर घाट उन दिनों नामी जहाज घाट था। कई स्टीमर और बड़ी-बड़ी नावें वहाँ हमेशा

बँधी रहती थीं। अँधेरे में चुपचाप एक बडी नाव पर चढ़ कर मल्लाहों की आँखें बचाकर राजू रस्से का एक बंडल उठा लाया।

मैं घाट के एक किनारे अँधेरे में खड़ा था। राजू आकर बोला—चल अब।

पुलिस साहब का बँगला क्लब से यही एक मील होगा। साहब घोड़े पर चढ़कर आया जाया करता है। उसे एक बीमारी थी कि वह घोड़ा कभी धीरे-धीरे नहीं चलाता था। वह हमेशा सरपट ही हाँकता था।

साहब के बँगले और क्लब के बीच एक जगह अंधेरे में हम लोग छिपे रहे। काफी रात बीते जब लगा कि अब साहब के लौटने का वक्त हो गया है तो राजू के हुक्म पर रस्से को जमीन से दो हाथ ऊँचे दोनों किनारे के आम के पेड़ों से कस कर बाँध दिया।

पहले ही कहा है कि तब काफी रात हो चुकी थी, सड़क पर चलना-फिरना बन्द हो गया था। रस्सा बाँध कर हम एक पेड़ के पीछे चुपचाप छिपे रहे। थोड़ी देर के बाद घोड़े की टाप सुनकर हम समझ गये कि अब साहब आ रहा है। टाप से यह भी मालूम हुआ कि साहब घोड़े को सरपट भगाये जा रहा है। हमारे पास पहुँचते ही घोड़ा उलट गया। साहब भी काफी दूर जा गिरा। नशे में चूर था, यूँ खड़ा होता कि नहीं इसमें सन्देह है—उस पर यह अचानक गिरहबाजी। पुलिस साहब की हालत तुम लोग बड़े मजे में समझ रहे होगे। घोड़े से गिर कर बेटा कराहने लगा।

राजू खूँखार शेर की तरह साहब पर झपटा। उसकी बुरी मरम्मत की। मार से साहब के नशे का भूत भाग-सा गया। राजू मुँह से एक शब्द भी नहीं बोला। काम खतम कर साहब की कमर से रिवालवर खोलकर वह उठ खड़ा हुआ।

मेरी ओर इशारा किया, चल!

फुर्ती से रस्से को खोलकर हम दोनों खिसक गये। आदमपुर घाट पर पहुँच गये। राजू रस्से को यथास्थान रख आया, फिर साहब के रिवालवर को गंगा में फेंक दिया—बोला चल, पार चलें। साहब को अच्छा सबक मिल गया, क्यों?

यह है मेरा राजू, मेरा इन्द्रनाथ! अन्याय के विरुद्ध सीना तानकर खड़े होते, दूसरे के लिए अपना प्राण न्योछावर करते मैंने दूसरे को नहीं देखा है। वही राजू एक दिन रात को किसी से बिना कुछ कहे-सुने कहाँ लापता हो गया, इसका पता आज भी नहीं चला। उसका मुखड़ा, उसकी बातें याद आने पर आज भी मेरे कलेजे में टीस उठने लगती है। वह मेरा कितना बड़ा मित्र था। उस बचपन से आज तक न जाने कितनी जगहों में घूमा, न जाने कितने चेहरे देखे; लेकिन नहीं, राजू की तरह एक भी आदमी मेरी निगाह में नहीं आया।

———

गुरुदेव का जहाज-भक्षण

कई वर्षों के बाद उस बार शरत्चन्द्र भागलपुर गये हुए थे। उनका यश चारों ओर फैल गया था। जहाँ भी जाते वहीं दर्शनार्थियों की अपार भीड़ इकट्ठी हो जाती।

शरत्चन्द्र मामा के यहाँ ही टिके। परिचित-अपरिचित बहुतेरे लोग मिलने आये हुए थे। कई दिनों के बाद जब भीड़ कुछ कम हुई, एक दिन शाम को बनफूल शरत्चन्द्र से मिलने आये।

बनफूल बहुत दिनों से भागलपुर शहर में रह रहे हैं। साहित्य-क्षेत्र में उनके आने के पहले ही शरत्चन्द्र भागलपुर छोड़कर चले आये थे। इसलिए दोनों में कभी परिचय नहीं हुआ। बनफूल ने जाकर देखा कि शरत्चन्द्र आराम-कुर्सी पर बैठे तार से गड़गड़े की नली साफ कर रहे थे। बनफूल ने प्रणाम करके अपना परिचय दिया।

शरत्चन्द्र बोले—अरे, आओ, आओ। देखो तो इतने दिनों के बाद आज तुमसे परिचय हुआ। तुम यहाँ रहते हो, यह नहीं जानता था। जानता तो पहले ही बुला भेजता। तुम्हारी बहुत-सी चीजें मैंने पढ़ी हैं। पढ़कर काफी आनन्द भी पाया है।

बैठक में गद्दी बिछी हुई थी। बनफूल उसपर बैठ के बोले—आपने मेरी चीजें पढ़ी हैं, मेरे लिए यह परम सौभाग्य की बात है। ऐसा क्या लिखता हूँ।

नहीं, नहीं। तुम सचमुच ही अच्छा लिखते हो।

बनफूल बोले—मेरी बात छोड़िए दादा! अच्छा हो कि कुछ अपनी सुनाइए, बैठकर सुनूँ।

अपनी बात खुद कहूँ, यह कैसा लगेगा, तो कुछ और सुनाऊँ।

दादा, सुना है आप बहुत अच्छी कहानियाँ सुनाते हैं, उन्हीं में से एक सुनाइए।

कौन-सी कहानी सुनाऊँ बताओ तो। तुम साहित्यिक हो अच्छी बात है, तो तुम्हें एक सच्ची कहानी सुनाता हूँ। हमारे बचपन की कहानी है। भागलपुर के आदिमपुर घाट की बातें हैं।

शरत्चन्द्र कहानी सुनाएँगे, इस बात को सुनकर कमरे के सभी लोग उनके इर्द-गिर्द जमा हो गये। एक तो शरत्चन्द्र खुद कहानी सुना रहे हैं, उस पर घटना इसी भागलपुर की ही है और वह भी सच्ची है।

शरत्चन्द्र ने तबतक गड़गड़े की नली साफ कर ली थी। नौकर चिलम चढ़ाकर दे गया था। निगाली को मुँह में डाल खुशबूदार तम्बाकू पीते हुए शरत्चन्द्र ने कहानी शुरू की।

हम तब बच्चे थे। स्कूल में पढ़ते थे। उस समय एक बार यह खबर फैल गई कि आदिमपुर के घाट पर एक पहुँचे हुए साधु आये हैं। गेरुआ वस्त्र और जटाजूट के लिहाज से और साधुओं की तरह होने पर भी, कहते हैं, इनके गुण और इनकी शक्ति असाधारण है। कई दिनों के अन्दर ही इसी भागलपुर में ही जाने कितने लोगों की कितनी कठिन बीमारियाँ ठीक कर दी हैं। और यही नहीं, न जाने कितने करिश्मे दिखा रहे हैं।

आम का मौसम नहीं है, किसी ने कहा—महात्मा जी, मैं पका आम खाना चाहता हूँ। महात्मा ने फौरन झोले में हाथ डाल खासा अच्छा पका आम हाजिर कर दिया। इन विचित्र बातों को देखकर लोगों के

अचरज का ठिकाना नहीं। थोड़े ही दिनों में सारे शहर में हल्ला हो गया। नतीजा क्या हुआ। जानते हो। साधु को देखने के लिए आदिमपुर घाट पर रोज लोगों की अपार भीड़ होने लगी। बहुतेरे उनके परम भक्त हो गये, मन्त्र-वन्त्र देकर साधु ने उन्हें चेला भी मूँड़ लिया।

एक दिन साधु ने अपने चेलों से कहा—मैं गङ्गा माई की पूजा करूँगा। भक्त सुनकर गद्‌गद् हो उठे।

यह ऐसी कौन-सी बात है गुरुदेव। कल ही पूजा की सारी-सामग्री ला हाजिर करेंगे। आप पूजा की तैयारी कीजिये।

अगले दिन शिष्य वृन्द ने गङ्गामाई की पूजा के लिए घाट पर काफी सामग्री ला हाजिर की। गङ्गा के तीर बालू पर पानी से सटकर सारी सामग्री तरतीब से सजाकर रखी गई। पूजा का समय हो ही रहा था। साधु पूजा पर बैठने जा रहे थे कि एक अनहोनी बात हुई। तब कार कम्पनी का बड़ा स्टीमर रोज उसी समय आदिमपुर घाट से गुजरता था। धुँआधार भोंपू बजाता था। उसके जाने से बड़ी-बड़ी लहरें उठती थीं। लहरों ने क्या किया जानते हो, गङ्गामाई की पूजा का सारा सामान बहा ले गईं। चेले हाय-हाय कर उठे। साधु आपे से बाहर हो गये। चिल्लाकर अंधाधुन्ध श्राप देने लगे। जहाज की इतनी बड़ी हिम्मत कि मेरी गङ्गामाई की पूजा का सामान बहा ले जाय। अच्छा कल आना बेटा जहाज। देखना कल तुझे सीधे निगल जाऊँगा। कल भाग निकलने का मौका नहीं दूँगा, जो हो।

चेले साधु की बात सुनकर दंग रह गए। गुरुजी यह क्या कहते है। इतने बड़े जहाज को सीधे निगल जायेंगे।

एक चेला तो बोल ही बैठा—गुरुदेव, यह जहाज है। गुरुदेव ने उसके मुंह से बात छीनकर कहा—हाँ, हाँ, मेरी बात एक है। कल उस

जहाज को मैं निगलूँगा ही, वह बचकर जाने नहीं पाएगा। ऐसी हिमाकत। मेरी पूजा की सामग्री बहा ले जाय।

चेलों को अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था। आदमी जहाज निगलेगा यह क्या कभी सम्भव हो सकता है ? अन्त में उन्हीं में से एक बोला—गुरुदेव के लिए कोई भी बात असम्भव नहीं। साधना के बल पर वह क्या नहीं कर सकते। जहाज भक्षण तो मालूली-सी बात है। महापुरुषों की लीला ही कुछ और होती है रे भाई।

ऐसी बात सारे शहर में बिजली की तरह फैल गई। सबने सुना—कल दिन के बारह बजे जब कार कंपनी का बड़ा जहाज आदमपुर घाट के सामने से जाएगा तो साधु बाबा उसे निगल जाएँगे। शहर से बाहर आस-पास के गावों में यह खबर फैल गई।

अगले दिन सबेरे ही आदमपुर घाट पर लोगों की भीड़ शुरू हो गई। दल बना कर हम भी जा डटे। दिन ज्यों-ज्यों चढ़ता जा रहा था, लोगों की भीड़ भी बढ़ती जा रही थी। घाट और आस-पास कहीं तिल रखने की जगह नहीं रह गई थी। देखते-देखते बड़े-बड़े पेड़ भी लोगों से भर गए। कहीं जगह न पा बहुतेरे गंगा में जा खड़े हुए। साधुजी का जहाज भक्षण देखने के लिए, बताओ कौन इतना कष्ट सहने के लिए तैयार नहीं होगा !

११ बज गये अब १२ भी बजने ही वाला था। लेकिन साधु बाबा सुगबुगा नहीं रहे थे। तीर पर धूनी रमाये वह गहरे ध्यान में मग्न थे। इधर लोगों की भक्तिमय उत्कंठा गंगा के किनारे फटी पड़ रही थी। इसी समय दूर मुजरिम की चोटी दिखाई पड़ी। सभी शोर मचाने लगे—वह देखो, जहाज आ रहा है।

चिल्लपों सुनकर महात्माजी का ध्यान भंग हुआ। उन्होंने आँखें

खोलकर देखी। फिर गम्भीर होकर धीरे-धीरे गंगा में जा उतरे। रवि-वर्मा का गंगावतरण चित्र देखा है न तुम लोगों ने ? उस चित्र के शिव की तरह कमर पर दोनों हाथों को रखे, वह स्थिर होकर कमर भर पानी में जा खड़े हुए। फिर अचानक चिल्लाकर जहाज से कहने लगे—आज तू बचकर नहीं जा पाएगा। आ तू आज तुझे खा ही जाऊँगा।

कहने के साथ-साथ उनका स्वर चढ़ता जा रहा था। उसके साथ लोगों के कलेजे की धड़कन भी बढ़ती जा रही थी। आज न जाने क्या होने वाला है।

गंगा के तीर पर इस समय हल्लागुल्ला बिलकुल बन्द हो गया था। सांस बन्द किये सभी सोच रहे थे—इतने बड़े जहाज को साधु कैसे निगल जायेगा ?

गरजता हुआ जहाज आ पहुँचा। आदमपुर के घाट से लहरें टकराने लगीं। साधु ने हुंकार लगाई—आ गया ? आ! कह कर, मुँह बाकर जहाज की ओर बढ़ने लगे।

ठीक इसी समय क्या हुआ जानते हो ? किनारे से १०, १५ आदमी रोते पीटते पानी में कूद पड़े और साधु का पैर जा पकड़ा। गुरुदेव क्षमा कीजिए, क्षमा कीजिए गुरुदेव। जहाज एक निर्जीव, अचेतन, तुच्छ वस्तु है, उससे कसूर हो गया है, उसे क्षमा कीजिए। आप जैसे पहुँचे हुए साधु के लिए उसपर क्रोध करना शोभा नहीं देता। इसके अलावा जहाज पर नरनारी, बालक-वृद्ध अनगिनत यात्री हैं, उन्होंने तो कोई अपराध नहीं किया है। गुरुदेव! किस अपराध के लिए आप उन्हें खायेंगे।

सुनकर साधु की त्योरियाँ चढ़ गईं। थोड़ी देर उसने कुछ सोचा फिर लम्बी सांस छोड़ते हुए कहा—बात सही है। अच्छा, जाने दो।

तुम्हारी बात मान लेता हूँ बेटे। फिर जहाज की ओर देख हाथ हिलाते हुए कहा—जा बेटा, खूब बचा। तेरा पुनर्जन्म हो गया।

जहाज तब तक साधु को छोड़कर दूर चला गया था। आदिमपुर घाट पर इकट्ठे हुए लोगों ने चैन की सांस ली।

बनफूल बोले—इतने दिनों से सुनता आ रहा था कि आप मजेदार कहानियाँ सुनाते हैं, आज कानों से सुनकर कृतार्थ हुआ।

———

सामता बेड़ की आबहवा

अश्विनी दत्त रोड बालीगंज पर शरत्चन्द्र का मकान उन दिनों बन ही रहा था। उन्हीं दिनों हुगली जिला साहित्य सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन का सभापति बनने का अनुरोध लेकर अध्यापक कानन बिहारी मुखोपाध्याय शरत्चन्द्र के पास पहुँचे। शरत्चन्द्र के मामा और साहित्यिक मित्र उपेन्द्रनाथ गंगोपाध्याय भी उनके साथ थे।

उपेन बाबू को देखते ही शरत्चन्द्र बोले—जरूर ही किसी खास इरादे से आए हो।

सभापति बनने की बात सुनते ही ना, ना कहकर चिल्ला उठे। इसके बाद बहुतेरे अनुरोध के बाद राजी हुए सही में लेकिन बोले—देखो बड़ी-बड़ी सभाएँ मुझे जरा भी अच्छी नहीं लगती हैं। सभापतित्व करते हुए मैंने देखा है कि कई घंटे बैठे रहने के सिवाय और कुछ पल्ले नहीं पड़ता है, न पाँच आदमियों से घुलकर बातचीत हो पाती है और न किसी से मिलना-जुलना। सभा करके दस निबन्ध पढ़ने में क्या सार्थकता है यह मेरी समझ में नहीं आता। बताओ इन्हें कौन सुनता है? छोटी-मोटी गोष्ठी हो तो उसका बात अलग है। दस आदमियों से बातचीत रहती है, जान-पहचान हो सकती है। इसी बीच अन्दर से अतिथियों के लिए जलपान आ पहुँचा था। खाते हुए उसने शरत् बाबू से पूछा—तुम्हारे कलकत्ते के मकान का काम कहाँ तक आगे बढ़ा शरत्।

अरे, उसकी बात क्या कहते हो। लोगों ने मिलकर कलकत्ते का

मकान बनाने के लिए मजबूर किया। मेरी इच्छा थी कि कलकत्ते में नहीं बनवा कर इसके आस-पास कहीं भागीरथी के किनारे एक मकान बनवा कर रहूँ। लेकिन यह नहीं हुआ।

कानन बाबू ने पूछा—सामता बेड़ की आबहवा कैसी है वहाँ मलेरिया है क्या?

शरत्चन्द्र ने हँसते हुए कहा—उपेन, कानन को तुमने मेरी वह कहानी शायद अभी तक नहीं सुनाई है। अच्छा, तो मैं ही सुनाता हूँ, सुनो।

इसी सामता बेड़ के बगल वाले गाँव में मेरे बहनोई का घर है। उनकी उम्र अब सत्तर के करीब होगी। यहाँ की आबहवा के बारे में उनसे अगर कोई पूछे तो वे क्या कहते हैं जानते हो? कहते हैं—कुछ पूछिए मत, यहाँ बड़ी असुविधा होती है। इतनी उम्र हुई, खुली जगह में बैठकर खरा तमाकू पीऊँ इसकी भी सूरत नहीं है।

बात समझ में आई। गाँव में अपने से उम्र में बड़े लोगों के सामने कोई तम्बाकू नहीं पीता है। मेरे बहनोई की उम्र यद्यपि सत्तर है फिर भी इस गाँव में उनसे ज्यादा उम्र के कितने ही चलते फिरते लोग हैं इसीलिए खुली जगह बैठकर तम्बाकू पीना एक तरह से असम्भव है। किसी न किसी की निगाह पड़ ही जायगी। इसीलिए इस बुढ़ापे में भी पीने की इच्छा हुई तो घर में छिपाकर पीना पड़ता है।

अतएव समझ रहे हो कि यहाँ की आबहवा कैसी है। पीट कर नहीं मारने से यहाँ के बुड्ढे नहीं मरते हैं।

डाक्टरी

होमियोपैथ डाक्टर के तौर पर शरत्चन्द्र की बड़ी ख्याति थी। साधारण-असाधारण न जाने कितने रोगों को उन्होंने कितनी बार ठीक कर दिया इसका कोई हिसाब नहीं। किस तरह से उन्होंने यह डाक्टरी शुरू की थी, उसकी कहानी एक बार अपने एक मित्र को सुनाई थी।

गरीब दुखियों को थोड़ी बहुत सहायता पहुँचाने के लिए एक बार होमियोपैथी सीखने की धुन सवार हुई। कुछ रुपये खर्च करके बहुत-सी किताबें खरीदीं। बड़े परिश्रम से उन्हें पढ़ा भी। अन्त में एक दिन लगा विद्या तो थोड़ी बहुत आ गई। अब प्रयोग करके देखना चाहिए।

प्रयोग करने का फैसला तो किया लेकिन अब रोगी कहाँ मिले। मेरी घर में पढ़ी विद्या पर भरोसा करके कौन इलाज कराने आता। बताओ क्या करता, खुद ही मरीज ढूँढ़ने लगा। घर पर जो लोग आते उनसे खोद-खोद कर पूछता—कोई बीमारी वगैरह तो नहीं है—बदहजमी, सिरदर्द, खट्टी डकार, कान की शिकायत, दिल की धड़कन।

सभी कहते नहीं। किसी को कोई बीमारी नहीं है, सभी बड़े मजे में स्वस्थ हैं। मुझे बड़ी निराशा हुई। मुफ्त में इलाज करूँगा, मुफ्त में दवा दूँगा, फिर भी मरीजों के लाले। यह कब तक सहता। मरीजों के अकाल के कारण मेरी इतने परिश्रम से सीखी विद्या बेकार जायगी। घात लगाये बैठा था। इसी समय एक दिन सचमुच ही एक मरीज मिल ही तो गया।

मेरे पिछवाड़े जो ग्वाले रहते थे, सौभाग्य से उनके यहाँ की एक बुढ़िया मेरे यहाँ दवा लेने पहुँची।

उस दिन की बात मुझे आज भी भलीभाँति याद है। बहुत खुश होकर बुढ़िया को अच्छी तरह देखा। बहुत सोच-विचार कर उसे दवा दी। और कह दिया—देखो, यह जो तुम्हें दवा दे रहा हूँ, वह सिर्फ आज भर के लिए है। कल सबेरे फिर आना। कैसी हो इसे फिर देखना होगा।

अगले दिन सबेरे बड़े उत्साह से बुढ़िया की प्रतीक्षा कर रहा था। सबेरा बीता, दोपहर हुई, मैं बैठा रहा। बुढ़िया नहीं दिखाई पड़ी, बड़ी निराशा हुई। साथ ही डर भी लगने लगा कि कहीं बुढ़िया को गलत दवा तो नहीं दे दी। डर के मारे बुढ़िया की खबर लेने ग्वालों के यहाँ भी न जा सका।

कई दिन बीत गये। बुढ़िया नहीं दिखाई पड़ी। मेरी दुश्चिन्ता भी बढ़ती गई। निरन्तर लगता था यह विद्या मुझे आएगी। पिछवाड़े की खिड़की बन्द थी न जाने क्या सोचकर उसे खोलने गया तो देखा कि दीवार के उस पार खुले मैदान में बुढ़िया बड़े मजे में गायों को घास खिला रही है।

डरते हुए उसे पुकारा—क्यों, तुम्हें तो बीमारी हुई थी, मगर तुम तो एक ही बार दवा ले गई फिर नहीं दिखाई पड़ी।

बुढ़िया ने कहा—तुम्हारी दवा रामबाण है भइया। तुम धनवन्तरि हो। बस एक ही बार खाकर मैं चंगी हो गई। फिर जरूरत ही नहीं पड़ी इसलिए नहीं आई। सुनकर चैन की साँस ली, छाती पर का बोझ उतरा। जरा सँभल कर बोला—तुम्हें कम से कम खबर तो देनी चाहिये थी। अच्छी हो गई, चलो अच्छा ही हुआ।

कैसी खराब बात है जरा सोचो तो। कहाँ जरा जमकर इलाज करता। दवा देता यह भी नहीं हुआ। एक तो मरीज ही नहीं मिलते और अगर कहीं से एक मिला भी तो एक ही खुराक में मुझे धनवन्तरि कहती है।

दूसरे दिन डाक्टरी का कमाल दिखाने का मौका नहीं मिला।

—:❀:—

रवीन्द्रनाथ किस के लिए हैं

अखबारों में जिस दिन कवि सत्येन्द्रनाथ दत्त की मृत्यु का समाचार छपा, उसी दिन अपराह्न में वातायन पत्रिका के संचालक गण और कई विशिष्ट साहित्यिकों ने एकत्र होकर कवि की स्मृति में एक बड़ी शोक-सभा करने का फैसला किया। सभापति बनेंगे शरत्चन्द्र। शरत्चन्द्र से मिलकर सभा-सम्बन्धी सारी व्यवस्था की जिम्मेदारी दी गई वातायन सम्पादक अविनाशचन्द्र घोषाल पर।

अविनाश बाबू का तब तक शरत्चन्द्र से परिचय नहीं था। उन्होंने उन्हें कई सभाओं में देखा भी था। जो भी हो, एक दिन सबेरे वे शरत्चन्द्र के बाजे शिवपुर वाले घर पर पहुँचे। प्रस्ताव सुनकर शरत्चन्द्र बोले—देखो, सत्येन्द्र मेरा एक दोस्त था, उसे बहुत प्यार करता था। इसलिए शोक सभा में सभापति बनकर कुछ बोलने के लायक मेरे मन का हाल तो नहीं होगा। इसके अलावा, सभा में भाषण देना मुझे एक तरह से बिलकुल ही नहीं आता है। तुम लोग किसी और को सभापति बनाओ तो बड़ा अच्छा हो।

अविनाशचन्द्र चुप थे, सोच रहे थे किस तरह राजी कराया जाय। इसी समय शरत्चन्द्र फिर बोले—अच्छा, तुम जो मुझे सभापति बनाने आए हो, सो मेरे जाने पर इस सभा में दूसरे भद्र लोग आएँगे तो!

विस्मित होकर अविनाश बाबू ने कहा—यह आप क्या कह रहे हैं

शरत् दादा, मेरी तो समझ में नहीं आ रहा है। "क्यों, तुम नहीं जानते कि इस देश में ऐसे बहुतेरे लोग हैं जो मुझे फूटी आँखों भी नहीं देख पाते हैं। कहा जाता है कि मैंने बँगला साहित्य में गन्दी चीजों की आमदनी की है।"

अविनाश बाबू ने कहा—ऐसे नासमझ लोग समाज में थोड़े बहुत हुआ ही करते हैं, वे तो साहित्य के हितैषी नहीं हैं, साहित्य के शत्रु हैं। बंकिमचन्द्र, रवीन्द्रनाथ इन पर भी हमला करने से ये कभी बाज आए हैं क्या!

बगल वाली सेल्फ से शरत्चन्द ने एक किताब खींचकर कहा—इस किताब को देखो, तुमने जो कुछ कहा वहीं इसमें तुम्हें मिलेगा। इन लोगों ने रवीन्द्रनाथ तक को नहीं छोड़ा है। माना, मैं अदना-सा लेखक हूँ, गालियाँ देना चाहते हैं, दें, लेकिन रवीन्द्रनाथ का कैसे असम्मान करते हैं, यह समझ में नहीं आता। अरे, उनके चरणों के तले बैठकर लिखेगा ऐसा एक दूसरा आदमी तो बंगाल में ढूँढ़ने पर भी नहीं मिला। बात जब चल ही पड़ी तो तुम्हें एक घटना सुनाऊँ।

मेरे परिचित एक सज्जन ने उस दिन मुझसे कहा—देखिए, रवीन्द्रनाथ बड़े दुर्बोध्य हैं। आपकी चीजें फिर भी समझ लेता हूँ, लेकिन रवीन्द्रनाथ की अधिकांश चीजों में हाथ लगाए ऐसी किसमें हिम्मत है। पाठक अगर समझ ही न सका कि लेखक क्या कहना चाह रहा है तो ऐसी चीजें लिखने से फायदा ही क्या बताइए तो साहब!

सज्जन की बातें सुनकर मुझे बड़ा गुस्सा आया। बड़ी कठिनाई से गुस्सा रोककर उनसे कहा—असल बात क्या है जानते हैं? मैं जो कुछ लिखता हूँ वह आप लोगों के लिए है और रवीन्द्रनाथ जो कुछ लिखते हैं वह हम लोगों के लिए है। अतएव काफी अन्तर तो रहेगा ही।

बात सज्जन को शायद लगी थी, कुछ देर चुप रह उठकर चले गए थे।

अविनाश बाबू का निवेदन उस दिन अंत में व्यर्थ नहीं हुआ। सत्येन्द्रनाथ की स्मृति-सभा की बात आज तक हम लोगों को याद है, सभापति का आसन शरत्चन्द्र ने ग्रहण किया था।

रायल बंगाल टाइगर

नन्दीग्राम का वह युवक दो दिन के बाद फिर आया है। शरत्चन्द्र को प्रणाम करके बोला—आज घर जाऊँगा। जाने के पहले प्रणाम करने आया हूँ।

घर से मतलब तुम्हारा वही नन्दीग्राम?

जी, हाँ।

अच्छा, नन्दीग्राम तो कांथी तहसील में है न?

जी हाँ।

तुम्हारे यहाँ से सुन्दरवन कितनी दूर है?

बहुत दूर होगा।

रात में शेर की दहाड़-वहाड़ नहीं सुनाई देती है?

जी, नहीं।

जंगल से छुटक कर शेर-वेर तुम्हारी तरफ नहीं आते कभी?

जी, नहीं। बचपन में सुना था एक बार आया था। गाँव के लोगों ने घेर कर उसे गोली के घाट उतार दिया।

रायल बंगाल था क्या?

नहीं, एक बहुत छोटा सा चीता था।

देखो, तुम्हारी इस शेर की बातों से मुझे बचपन में शेर देखने की एक कहानी याद आती है। बड़ी मजेदार कहानी है, सुनाता हूँ।

तब मैं देवानन्द पुर में रहता था, और प्यारे पंडित की पाठशाला

में पढ़ता था। मेरा सहपाठी काशीनाथ एक दिन बोला—क्यों, शेर देखने चलोगे, रायल बंगाल टाइगर। सिर्फ एक पैसे में दिखा रहा है।

अभी कुछ ही दिन पहले सुन्दरवन और उसके रायल बंगाल टाइगर की बात किताब में पढ़ी थी। शेर देखने का लोभ नहीं सँभाल सका। बोला—कहाँ रे जरूर जाऊँगा।

काशीनाथ ने कहा—मेरे ननिहाल में एक हफ्ते से रथयात्रा का मेला लगा है, वहीं शेर दिखाया जा रहा है। आज उल्टा रथ है, आज ही आखिरी दिन है। चलो चलें। गनेशवा, किन्ना ये लोग भी जायेंगे।

तो इतने दिन क्यों नहीं बताया। आज आखिरी दिन बताने आया है।

जो भी हो माँ से पैसे ले हम चारों यार शेर देखने के लिए रवाना हुए। जल्दी पहुँचने के लिए सड़क छोड़ हमने खेतों की रह पकड़ी। घंटे भर बाद मेले में पहुँचकर देखा—एक खुली जगह में थोड़ा सा हिस्सा तिरपाल से घेरा गया है, एक ओर से अन्दर जाने का रास्ता है। इस रास्ते पर टूल पर बैठा एक आदमी गला फाड़कर चिल्ला रहा है, एक पैसे में शेर देखो, एक पैसे में रायल बंगाल टाइगर।

देखो, शेर देखने के लिए काफी लम्बी पाँत खड़ी हो गई है। एक पैसा देकर एक आदमी अन्दर जा रहा है और उसके निकलने पर तब दूसरा अन्दर जा पा रहा है। हम भी लाइन में जा खड़े हुए। काशी, किन्ना, गनेस सभी बोले—शरत् तू ही पहले जा।

मैं गया। पैसा देकर अन्दर जाते समय जो आदमी शेर देखकर लौट रहा था उससे पूछा—क्यों साहब, शेर कैसे देखा। उसने कोई जवाब नहीं दिया, चुपचाप बाहर चला गया। सोचा, मैं लड़का हूँ।

इसीलिए शायद आदमी ने मेरी बातों पर कान नहीं दिया। फिर सोचा, छोड़ो, न बोले, अभी-अभी तो अन्दर जाकर देखूँगा।

जाकर देखा 'राम कहो, शेर का नामोनिशान नहीं है। चारों ओर सूना है और उसी में एक जगह एक आदमी हाँड़ी में शिर डाल कर बीच-बीच में शेर की तरह गरज रहा है। इस आदमी के पास ही एक तार के पिंजड़े में एक बिल्ली बैठी है, उसके बदन पर पीले दाग हैं, बिलकुल हाथ के बने हुए।

देखकर तबीयत भिन्ना उठी। सोचा, भले ही लड़का हूँ, चार कड़ी बातें सुना दूँ। इसी समय जो आदमी शेर की तरह गरज रहा था वह हाँड़ी से सिर निकालकर मेरे पास आया। आकर अचानक मेरे दोनों पैरों को पकड़कर फूट फूटकर रोने लगा।

मैं भौंचक्का रह गया। यह रोता क्यों है! रोते हुए उसने क्या कहा जानते हो। बोला—बाबू जी कृपाकर बाहर जाकर किसी से कुछ कहिएगा मत। दोनों भाई कमा-धमा कर पेट पाल रहे हैं। नौकरी-चाकरी नहीं है, घर में पन्द्रह सोलह खाने वाले हैं, किसी तरह आधा पेट खाकर जिन्दा हैं। अगर आपने कहीं पकड़वा दिया तो हम सभी भूखों मर जायेंगे। मैं बाम्हन का लड़का हूँ, यह देखिए मेरा जनेऊ। तनिक भी झूठ नहीं बोल रहा हूँ, बाबू अगर पकड़वा देते हैं तो इतनी ब्रह्म-हत्या होगी।

मैं बोला—अरे यह क्या करते हो, पैर छोड़कर बात करो न।

आदमी रोता हुआ बोलता जा रहा था। आप पहले वचन दीजिए कि बाहर जाकर किसी से कुछ नहीं कहेंगे। कम से कम आज भर बाबू जी, आज हमारा आखिरी खेल है, आप वचन नहीं देंगे तो आपका पैर नहीं छोड़ूँगा।

मैं बड़ी विपत्ति में पड़ा। और कुछ के लिए न हो सिर्फ पैर छुड़ाने के लिए मजबूर होकर बोलना पड़ा—अच्छा वचन देता हूँ, बाहर जाकर किसी से कुछ नहीं कहूँगा।

निकलते समय देखा मेरे बाद ही गनेश जा रहा है। उसने मुझ से पूछा—क्यों, शेर कैसा देखा?

मैंने कोई जवाब नहीं दिया, चुपचाप बाहर निकल आया।

निकलते समय फाटक पर वाले आदमी ने मुझसे कहा—बाबू जी आप तो देख चुके, अब कृपा करके बगल में हो जाइए पाँत के सामने भीड़ न कीजिए।

वैष्णव नन्दीग्राम

जाड़ों का सबेरा ! शरत्चन्द्र अपने कलकत्ते के मकान के बैठके में बैठे तम्बाकू पी रहे थे। सामने उनके मामा सुरेन्द्रनाथ गंगोपाध्याय बैठे हुए थे। दोनों में इधर-उधर की बातें हो रही थीं। इसी समय एक नौजवान कमरे में आकर शरत्चन्द्र को प्रणाम करके खड़ा हुआ।

शरत्चन्द्र नौजवान के मुँह की ओर देखकर बोले—अचानक प्रणाम, तुम कौन हो ? तुम्हें पहचानता हूँ ऐसा तो नहीं लगता !

नौजवान ने कहा—मैं आपका एक भक्त हूँ। आपको आँखों कभी नहीं देखा था ! इसीलिए सोचा, अब जब कलकत्ता आया हूँ, आपके प्रति श्रद्धा प्रकट करके प्रणाम करता जाऊँ।

शरत्चन्द्र ने युवक को एक कुर्सी दिखाकर कहा—बैठो ! कहते हो कलकत्ता आए हो तो तुम्हारा घर कहाँ है ?

मेदिनीपुर।

मेदिनीपुर ! किस जगह !

नन्दीग्राम।

नन्दीग्राम का नाम सुनते ही शरत्चन्द्र दोनों हाथ जोड़कर मस्तक पर लगाते हुए बोले—अरे बाप रे, नन्दीग्राम। नमस्कार। वह तो परम वैष्णवों का स्थान है !

सुरेन बाबू अब तक चुप बैठे थे। नन्दीग्राम के नाम पर शरत्चन्द्र

को श्रद्धापूर्वक नमस्कार करते देख और परम वैष्णवों का स्थान कहते सुन पूछा, मामला क्या है, शरत् ।

वह बड़े मजे की बात है, मामा । सुनोगे उसकी कहानी ।

बहुत दिन पहले की बात है। उन दिनों नन्दीग्राम में इन्हीं जाड़ों में ही बहुत बड़ा एक मेला लगता था। स्थानीय और बाहर से लोग इस मेले को देखने आते थे। और यह पूरे महीने भर चलता था। जिस तरह अगनित दूकानें खुलती थीं, उसी तरह नाना प्रकार के खेल-तमाशे भी होते थे। स्थानीय मंडल के लोग थाने के दारोगा से साँठ-गाँठ करके जुआ भी खेलवाते थे। साँठ-गाँठ इस प्रकार की होती थी। जुआ वाले जुआ खेलाने की अनुमति के लिए जो रुपए देंगे उसका आधा दारोगा लेगा और बाकी आधा मंडलों को मिलेगा। मंडल के लोग रुपये खुद नहीं लेकर देश के कामों में खर्च करते थे।

एक बार क्या हुआ सुनो। एक नया दारोगा आया। मंडलों से समझौते के बावजूद जुआ वालों से पूरे रुपए वसूल कर सब खुद हड़प गया, मंडलों को एक पैसा देना तो दूर रहा, वह दिखाया भी नहीं।

मंडलों ने जुआ वाले को पकड़ा। उसने कहा—हर साल की तरह सारा रुपया दारोगा के हाथों में दिया है। यह दारोगा ऐसा शैतान है इसे हम कैसे जानें बताइए! आप लोगों ने भी पहले से कुछ नहीं कहा था कई बार दारोगा के पास जाने पर बात साफ हो गई कि कोई भी नतीजा नहीं निकलने का। अंत में रुपए की आशा छोड़ दी और थाने पर जाना बन्द कर दिया।

कई महीने बीत गए। जुए के रुपए की बात भी दब दबा गई। इसी समय नन्दीग्राम के दक्षिण पाड़ा से एक भयंकर मारपीट और खून-खराबी की बात पहुँची।

दारोगा नम्बरी घूसखोर था। दंगे हंगामे की खबर पाते ही खुद वहाँ जाता था और जाकर दोनों ओर से घूस लेता था। इसलिए वह अकेला जाता, साथ में किसी को नहीं लेता, कहीं किसी को हिस्सा न देना पड़े।

मार-पीट खून-खराबी की यह खबर बिलकुल झूठी थी। गाँव के मंडलों ने इतने दिनों के बाद जुए के बदला लेने की ठानी है।

दारोगा के पहुँचते ही मंडलों ने उसे चारों ओर से घेर लिया। फिर उसका हाथ पैर रस्से से कसकर बाँध दिया। लेकिन किसी ने उस पर हाथ नहीं छोड़ा। खून-खराबी के डर से ही ऐसा नहीं किया गया। परम वैष्णवों का स्थान है न।

रक्तपात के डर से हाथ नहीं उठाया सही में, लेकिन किया क्या, जानते हो। परम वैष्णवों ने दारोगा को पुआल के एक ढेर में घुसेड़ दिया। फिर उसमें आग लगा दी। दारोगा बिचारा जब तक हरि के चरणों लीन नहीं हो गया तब तक कई आदमियों ने बड़े-बड़े बाँस लेकर ढेर को दबाए रखा।

परम वैष्णवों की भूमि है, इसलिए खून खराबी के डर से छुआ तक नहीं। यह विशुद्ध वैष्णव की पद्धति है, समझे।

आपरेशन

प्रेमांकुर आतर्पी और उनके साहित्यिक मित्रों का एक अड्डा था। न्यासिक चारुचन्द्र बन्दोपाध्याय, सौरीन्द्रनाथ दत्त वगैरह यहाँ नियमित रूप से जुटते थे। शरत्चन्द्र भी कभी-कभी आ जाया करते थे। उनके आने पर सभी घेर कर कहानी सुनाने के लिए जिद्द करते थे। और सिगरेट के साथ शरत्चन्द्र अपने मुग्ध श्रोताओं को एक के बाद दूसरी कहानी सुनाते चले जाते थे। यहीं उन्होंने अपनी "आपरेशन" कहानी सुनाई थी जो अब भी बहुतों को याद होगी।

बचपन में एक बार घोड़े की सवारी करते समय गिर पड़ा। गिरकर एक आफत मोल ले ली। मुझे हार्निया हो गया। कितनी पीड़ा होती थी तुम लोगों को क्या बताऊँ। जब दर्द के मारे न रहा गया तो एक डाक्टर के पास जा पहुँचा। देहात का डाक्टर था, देखकर घबरा गया। बोला—भई, मुझसे इसका इलाज नहीं होने का। बल्कि कलकत्ते जाकर किसी अस्पताल में भर्ती हो जाओ। आपरेशन के बगैर यह रोग अच्छा नहीं होने का।

अभिभावक-सुनकर बोले—अरे रहने दे आपरेशन, आपरेशन की कोई जरूरत नहीं ये सब डाक्टरों की फिजूल की बातें हैं। काट-कूट कहीं कुछ हो गया तो। नहीं, नहीं, उसके पास फटकने की जरूरत नहीं।

इन बातों से मुझे तसल्ली नहीं हुई, इसे तुम लोग मजे में समझ रहे होगे। ऐसी बीमारी को तो पाला नहीं जा सकता है।

अगले दिन थोड़े से रुपये जमा कर छिप कर घर से निकल पड़ा, किसी से कुछ भी नहीं कहा।

कलकत्ते में तब नामी अस्पतालों में वहीं मेडिकल कॉलिज था। लेकिन वहाँ भी जाया नहीं जा सकता, अभिभावकगण ढूँढ़-ढाँढ़ कर पकड़ लेंगे।

पूछताछ पर पता चला कि कलकत्ते के एक छोर पर डाक्टर चौधरी नाम के सज्जन ने एक मेडिकल स्कूल और उसके साथ ही एक अस्पताल खोला है। अस्पताल का अभी तक पक्का मकान नहीं बना है, फूस के भोपड़े में ही है। भोपड़ा ही सही। वहाँ फौरन दाखिल होना तय किया। चंगा होने में कितने दिन लगेंगे। इसके बाद मजे में घर लौट जाऊँगा।

तब का कलकत्ता आज जैसा नहीं था। तब के कलकत्ते का छोर जंगल से भरा हुआ था, दिन में ही स्यार घूमते-फिरते थे।

चौधरी साहब के अस्पताल में जा पहुँचा। डाक्टर साहब रोग का विवरण सुनकर प्रसन्न हुए। बोले—बड़े मौके से आए छोकरे, तुम्हारी तकदीर अच्छी है। कल ही हमारे बड़े सार्जन का आपरेशन का दिन है। तो कल ही तुम्हारा आपरेशन हो जाय, क्यों?

बस, भर्ती हो गया? एक छोटी सी भोपड़ी में मुझे एक चारपाई दी गई। नौकर पानी पिलाने आया।

गिलास लौटा रहा था कि उसने इधर-उधर देखकर धीरे से कहा क्यों मरने आये हो छोकरे, तीन पीढ़ी में जिसके आगे पीछे कोई नहीं होता वही यहाँ मरने आता है। मरने पर लाश काट कूट के काम आती है।

उसकी बातें सुनकर मेरे काटो तो खून नहीं। क्या कह रहा है यह आदमी। तो क्या वहाँ यूँ ही जान गँवानी पड़ेगी। सोचा, बाज आया

ऐसे आपरेशन से, यहाँ से अब किसी तरह भाग निकलूँ तो जान में जान आए। लेकिन भागूँ तो कैसे ? चारों ओर पहरा है। बड़े पशोपेश में पड़ा।

इधर पेट में कड़ा जुलाब पड़ा था, कई बार पाखाने जाकर पस्त हो गया। अब भागने की शक्ति नहीं रह गई। बेजान सा बिस्तर पर पड़ा रहा।

शाम को डाक्टर चौधरी खुद देखने आए। मुर्दनी आवाज में उनसे कहा डाक्टर बाबू भूख से मरा जा रहा हूँ। आज दिन भर कुछ भी खाने को नहीं दिया, ऐसे तो मैं मर जाऊँगा।

डाक्टर चौधरी भूख की बात सुनते ही आग बबूला हो गए, भूख से मरा जा रहा हूँ, खाने को दो वाहवाह। जानते हो छोकरे, तुम्हारे पेट की बदहजमी दूर करने में मेरा कितना खर्च हुआ है! आज तुम्हें उपवास करना होगा, कल आपरेशन होगा! कह कर बूट मचमचाते हुए दूसरे झोपड़े में चले गए।

एक तो भूख के मारे मरा जा रहा था, दूसरे डाक्टर की इन विचित्र बातों को सुनकर मैं बुरी तरह घबरा गया। सोचा अब जान नहीं बचेगी, मैं चन्द घन्टों का मेहमान हूँ। डर के मारे सारी रात नींद हराम हो गई। निरन्तर सोचता रहा, हाय अभिभावकों की बातें अनसुनी करके न जाने कितनी बड़ी गलती की।

रात तो किसी तरह कटी। सबेरा होते न होते यमदूत की तरह दो आदमी स्ट्रेचर लेकर आ धमके। बोले, उठो।

डरते हुए पूछा—उठकर, क्या करूँ ? यमदूतों ने कहा आज तो तुम्हारा आपरेशन है, चलो आपरेशन रूम में। उठो झट से इस पर लेट जाओ।

विनती करते हुए कहा—दोहाई तुमलोगों की, मुझे आपरेशन कराने की इच्छा नहीं है, मैं आपरेशन नहीं कराऊँगा। डाक्टर को बुलाओ, उनसे मैं कहूँ।

यमदूतों ने मेरी बात पर ध्यान नहीं दिया। एक प्रकार जबर्दस्ती मुझे स्ट्रेचर पर सुला लिया। फिर सीधे आपरेशन के कमरे में ला पटका। मैं अब मैं नहीं रह गया था।

आपरेशन रूम में डाक्टरी चौधरी हाजिर थे। हिम्मत बाँधते हुए बोले—डर किस बात की छोकरे, डर की कोई बात नहीं। अब इस टेबुल पर लेट तो जाओ।

देखा, मेरी एक न सुनेंगे। करुण स्वर में पूछा—डाक्टर साहब, मुझे बेहोश तो किया जायगा न। तुम्हें बिना बेहोश किए ही नश्तर दिया जायगा। तो कहता हूँ झट से लेट जाओ तो। इष्ट नाम जपते हुए टेबल पर चढ़ गया। कोई कठोर जैसी चीज मुंह पर रखकर क्लोरोफार्म छोड़ने लगा। बापरे बाप, क्लोरोफार्म का कैसा ठाठ था। मेरा तो गला घुटने लगा। कुछ देर के बाद सुना, कोई कह रहा है—लगता है इतनी देर में तो बेहोश हो गया है। लीजिये डाक्टर साहब।

अब बना, मुझे अभी पूरा होश था। बड़ी मुश्किल से चिल्लाकर बोला—डाक्टर साहब मैं अभी बेहोश नहीं हुआ।

नहीं उसने मुझे कृतार्थ कर दिया। डाक्टर चौधरी गरजते हुए बोले--मजाक छोड़कर अब सो जाओ तो।

नाक पर फिर वही क्लोरोफार्म थी। बौछार होने लगी। इस बार मानों मैं नशे में चूर होने लगा। यहाँ तक कि डाक्टर चौधरी को देखकर एक गाना गाने की तबीयत हो रही थी।

अचानक डाक्टर चौधरी ने मुझे पुकारा—क्यों छोकरे सुन रहे हो ? मैंने कहाँ—जी हाँ।

जी हाँ, अभी भी जी हाँ। अभी तक तुम बेहोश नहीं हुए ? हाय-हाय देखता हूँ, शैतान मेरा सत्यनाश करेगा। मेरा चार औंस क्लोरोफार्म खर्च हो गया, पर अभी भी कहता रहता है जी हाँ। कितनी मुसीबत से भीख माँग कर अस्पताल चलाता हूँ। इस तरह के दो-चार केस और मिल गये तो मेरी बधिया बैठ जायगी। दिवाला ही पिट जायगा। सुनो छोकरे, इसी उम्र में कितने तरह के नशे का शौक करते हो ?

इस बेतुके सवाल का कोई जवाब नहीं दिया। इसे तुम लोग समझ ही गये होगे। कंवल बोला—अबकी बार बेहोश होने जैसा लग रहा है डाक्टर साहब।

डाक्टर चौधरी ने कहा—भला चाहो तो इस बार हो जाओ। नहीं तो होश में ही तुम्हारा आपरेशन होगा, समझ रहे हो न। तुम्हारे लिए अब हमारे पास क्लोरोफार्म नहीं रह गया है। इस बात को याद रहे। इसके बाद कब बेहोश हो गया, इसकी बात याद नहीं।

जब होश में आया तो पहले यह समझ में ही नहीं आया कि कहाँ हूँ, क्या कर रहा हूँ। धीरे-धीरे एक-एक करके सारी बातें याद आने लगीं।

महसूस किया कि प्यास के मारे मेरी छाती फटी जा रही थी। और कमर में भी बड़े जोरों का दर्द हो रहा है। किसी तरह बोला—पानी, थोड़ा-सा पानी।

कोई पास आकर बोला, चलो होश तो आया। हम तो समझ रहे थे कि सदा के लिए आँखें मूँद लीं। लेकिन तुम्हें तो पानी देना बिलकुल मना है।

बगल से एक लड़की जा रही थी। उसने कहा—कैसा अभागा अस्पताल है मरते वक्त किसी को एक बूंद पानी भी नहीं मिलता है।

लड़की की बात सुन कर आदमी बोला—पानी कैसे दिया जाय? इसका तो पेट काटा गया है?

पानी के प्रसंग को छोड़ कर पूछा, कमर में बड़े जोरों का दर्द है सहा नहीं जाता है।

बोला—दर्द हो रहा है, दर्द तो नहीं होना चाहिये। दर्द क्यों होगा?

मैं बोला—क्या जानूँ? लेकिन ऐसा दर्द हो रहा है कि लगता है मर जाऊँगा। ओफ!

उसने धीमी आवाज में कहा—रङ्ग तो अब अच्छा नहीं दिखाई पड़ रहा है। डाक्टर साहब गलती में कोई धर्म-वर्म तो नहीं भूल गए हैं। तब तो फिर आपरेशन करना पड़ेगा।

फिर काटना पड़ेगा। जैसे ही इस बात को सुना मेरे सिर में चक्कर आने लगा। इसके बाद डाक्टर का चार औंस क्लोरोफार्म जो काम नहीं कर सका था, वह एक ही बात में हो गया अर्थात् मैं फिर बेहोश हो गया।

———

विधवा विवाह

'वंगवाणी' पत्रिका में 'पथ के दावेदार' सितम्बर १९२६ में समाप्त हुआ। पुस्तकाकार छपवाने की व्यवस्था करने के लिए शरत्चन्द्र सामताबेढ़ से कलकत्ते आये।

कलकत्ते में अभी उनका मकान नहीं बना था। इसलिए वे उमाप्रसाद मुखोपाध्याय के यहाँ टिके। उमाप्रसाद बाबू ने ही पहले-पहल 'पथ के दावेदार' को प्रकाशित किया।

अगले दिन वंगवाणी के प्रधान संचालक श्रीकुमुदचन्द्र राय चौधुरी शरत्चन्द्र से मिलने आए। मजलिस जम गई थी। बात-चीत के दौरान में कुमुदबाबू ने कहा—पथ के दावेदार समाप्त हुआ, मगर पाठक संतुष्ट नहीं हुए। वे कह रहे हैं कि अपूर्व से भारती का ब्याह नहीं हुआ। शरत् बाबू ने यह क्या किया।

शरत्चन्द्र कुछ देर तक चुप रहे। फिर हँसते हुए बोले—देखो लोग कहते हैं कि मैं कन्जरवेटिव हूँ। बहुत गलत कहते हैं, यह नहीं कहता। मैंने सोच रखा है कि मेरे मन के कोने में सचमुच ही कन्जरवेटिव छिपा बैठा है। तुम्हें शायद याद होगा, अपूर्व एक जगह अपनी माँ से कह रहा है, माँ तुम आज इस लोक में हो। लेकिन एक दिन स्वर्ग से तुम्हारा बुलावा आएगा। तब तुम्हें अपने अपूर्व को छोड़कर चला जाना होगा, जानता हूँ, लेकिन पहचान पाया हूँ माँ, वहाँ बैठकर तुम्हें बेटे के लिए आँसू नहीं बहाना होगा। अपूर्व की सशक्त मातृभक्ति में मैंने

किसी भी तरह त्रुटि पैदा होने नहीं दी है। इसीलिए अपूर्व से भारती का व्याह कराना मेरे लिए संभव नहीं हुआ।

कुमुद बाबू ने कहा—अपूर्व ने यह बातें कही थीं, इसलिए उसका व्याह नहीं कराया जा सकता है। यह बात क्या हमेशा लागू होती है। आपकी भारती ने भक्तिपूर्वक अपूर्व से कहा था कि वह खुद उनकी देख भाल करेगी। भारती के घर में घुसने पर अगर बाहर फेंक देती है तब भी वह जबर्दस्ती घुसेगी। लेकिन आपने तो भारती को इस बात का पालन करने नहीं दिया। अपूर्व की माँ के बर्मा आने पर आपने भारती से उसकी मुलाकात ही नहीं कराई।

शरत्चन्द्र ने कहा—कुमुद, बातों के कुछ तरीके होते हैं। अपूर्व की बातें उसके मज्जागत संस्कारों का परिणाम हैं, पूर्णरूप से आंतरिक हैं। लेकिन भारती की बातें केवल बात की बात हैं, वार्तालाप का अंश मात्र है। इसपर उतना उत्तर दिया जा सकता है। देखो जब, मैं संस्कार या प्रथा के विरुद्ध तर्क पेश करता हूँ, आचार-विचारों पर मैं बिलकुल खड्गहस्त हूँ, उनके विरुद्ध जब तर्क पेश करता हूँ तो तहेदिल से विश्वास करके ही देता हूँ। लेकिन कार्य क्षेत्र में देखा है कि जब मेरे मन के कोने में वह कन्‌जरवेटिव सिर उठाने लगता है, तब मैं कमजोर हो जाता हूँ। यही जैसे विधवा विवाह को ही ले लो। मेरा दृढ़ विश्वास है कि विधवाओं को पुनर्विवाह करने की अनुमति न देना स्त्री जाति के प्रति पुरुष जाति के अन्याय का घिनौना दृष्टान्त है। संसार के कितने ही पाप-तापों का यही मूल कारण है। लेकिन अचरज की बात यह है कि विधवा-विवाह करने की अनुमति देने का दायित्व जब मेरे ऊपर आ पड़ता है तो दिल से ऐसी अनुमति मैं कदापि नहीं

दे पाता। इसका प्रसंग आने पर अपने एक मित्रकी बात याद आती है। उसकी बात तुम लोगों को सुनाऊँ।

उन दिनों बर्मा में नौकरी करता था। वहाँ मेरा एक गोआवासी मित्र था। ब्याह के बाद ही बेचारा बर्मा चला आया, इसके बाद बहुत दिनों तक घर नहीं जा सका। एक दिन बातचीत के दौरान में मालूम हुआ कि वह अपनी मामूली तनखाह के रुपये जुटा रहा है, घर से अपनी बीवी को लाने के लिए। उसी बीच उसने दो सौ रुपये जमा कर लिए हैं, और तीन सौ जमा होते ही वह गोआ से अपनी स्त्री को ला सकेगा।

बाद में एक दिन मुलाकात होने पर उसने कहा—चटर्जी, तुमसे एक बात कहूँ? तुम मुझे तीन सौ रुपये उधार दोगे? मिल जाते तो घर से बीवी को यहाँ ले आता। मैं धीरे-धीरे तुम्हारे रुपये पटा दूँगा।

आदमी बड़ा अच्छा था। मेरे रुपये देते ही वह घर चला गया और कुछ ही दिनों के बाद वह उत्साह से स्त्री को लेकर लौट आया। आते ही उसने मुहल्ले में एक फ्लैट किराये पर लिया। उसका पूरा किराया चुकाना उसकी शक्ति के बाहर था। इसलिये उसने अपने दो सोने के कमरों में से एक को अपने एक प्यारे दोस्त लारेंस को किराए पर दे दिया। लारेंस भी उसी परिवार में रहने लगा। खाना-पीना भी एक ही साथ होता। फ्लैट का किराया और खाने के कुल खर्च का आधा लारेंस देता।

कुछ दिनों के बाद देखा कि गोआवाले मित्र को तपेदिक होगया है। बीच-बीच में आकर उसे देख आता, तरह-तरह की बातें होतीं, उसे भरसक सांत्वना देता, यद्यपि मैं जानता था कि इस रोग से छुटकारा पाने की उसे बहुत कम आशा है।

लेकिन इतनी जल्दी उसके जीवन के दिन समाप्त हो जायँगे, यह नहीं समझ पाया था। मौत के एक दिन पूर्व उसने मुझसे अचानक कहा—चटर्जी, इस जिन्दगी में तुम्हारा कर्ज मैं अदा नहीं कर जा सका। दो हजार रुपये का बीमा है, बीवी से कहे जा रहा हूँ; उस रुपये से वह तुम्हारा कर्ज पटा देगी।

मैंने कहा क्या बेकार की बातें कर रहे हो। रहने दो इन बातों को। उसके लिए तुम्हें चिन्ता करने की जरूरत नहीं। यह रुपया मुझे नहीं चाहिए। भगवान करे तुम चंगे हो जाओ। तुम्हारी स्त्री की तकदीर कहीं फूट गई तो ये थोड़े से रुपये उसके काम में आयेंगे।

मित्र थोड़ी देर तक एकटक मेरी ओर देखते रहे। उनकी आँखें छलछला आईं। बोले—चटर्जी, मेरी मौत से मेरी स्त्री का कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। मेरे मरने पर वह चैन की साँस लेगी। अगले ही दिन लारेंस से ब्याह कर लेगी। वे दोनों हर क्षण मेरी मृत्यु मना रहे हैं। विश्वास करो, यह जो मैं मर रहा हूँ, इसकी जिम्मेदारी मेरी स्त्री पर है। कम से कम इतना सच है कि उसी ने मेरी मृत्यु करीब ला दी। जिस दिन से मैंने उसे लारेंस से व्यभिचार करते देखा है, उसी दिन से जानता हूँ कि जिन्दा नहीं रहूँगा। उसके हाथों से दवा लेने की मुझे इच्छा नहीं होती। दवा देती है या और कुछ, कौन जाने!

मैं क्या करता, तुम्हीं बताओ! इधर-उधर की बातें करके सांत्वना देने की चेष्टा भर की, लेकिन उसे तसल्ली नहीं हुई, फफक-फफक कर रोने लगा।

यह तो हुई मेरे गोआवासी मित्र की बात। एक और सुनो। यह स्त्री दो संतानों की माँ थी।

हमारे यहाँ दूसरे जाति की एक बहू रहती थी। हम उसे गंगा की माँ के नाम से जानते थे पति और दो संतान—मृत्युञ्जय और गंगा को लेकर वह सुख से गृहस्थी चला रही थी। मृत्युञ्जय की उम्र यही दस साल की होगी—गंगा उससे बहुत छोटी थी। मजे में दिन कट रहे थे। अचानक उसके पति की मृत्यु हो गई। गंगा की माँ सब्र नहीं कर सकी, एक से सगाई कर बैठी। गंगा उसके साथ गई सही, पर मृत्युञ्जय को न जाने क्या हो गया। वह उसके साथ जाने को तैयार नहीं हुआ। गंगा की माँ ने मृत्युञ्जय के बारे में माथा-पच्ची करने की कोई जरूरत नहीं समझी। बड़े मजे में उसे छोड़ नए पति का हाथ पकड़ कर चली गई। अब जरा इस मृत्युञ्जय की दुर्गति की बात सोचो तो।

देखो, जब घटनायें याद आती हैं, तब सोचता हूँ कि हिन्दू-समाज में विधवा विवाह की रीति नहीं थी। हिन्दू-समाज में नारी के एक पति के विधान के कारण स्त्री कम से कम पति की मृत्यु की कामना नहीं कर सकती थी। पति की मृत्यु के बाद संतानों को भी जंजाल समझने का मौका उसे नहीं मिलता था। रही पाप-ताप की बात, वह तो विधवा के जीवन में भी है और सधवा के जीवन में भी। इसीलिए अनुदार मन जब कहता है कि हिन्दुओं का यह पुराना नियम ही अच्छा है तो इसका समर्थन किये बिना नहीं रहा जाता। दूसरी ओर जब विधवा विवाह के विरुद्ध भाषण सुनता हूँ तो इसे भी मान लेने को जी नहीं चाहता। लगता है कि विधवा विवाह को रोकने का अधिकार किसी को नहीं है।

कुमुद बाबू ने कहा—बहुतेरे इस विधवा-विवाह में उम्र तय कर देने के पक्षपाती हैं।

शरत्चन्द्र ने कहा—नहीं, यह नहीं हो सकता। उम्र से इन बातों

की सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती है। इस विषय में सोचने की बहुतेरी बातें हैं। समाज-सुधारक इस विषय पर सोच-विचार करेंगे। मुझे जो कुछ तुम्हें सूचित करना चाहिए, मेरे अनुभव में जो बातें घटी हैं, सब कुछ पुस्तकों में लिख दीं। कानून जारी करना उनका काम। सुधारक का काम करने की हिमाकत मैं नहीं करता। लेकिन विधवा-विवाह समाज के हर क्षेत्र में मंगलदायक है, इस बात को मैं नहीं मान सकता।

——

रवीन्द्रनाथ की क्षति

१३१४ बंगाब्द। 'भारतवर्ष' पत्रिका का कार्यालय। सम्पादकीय विभाग के कर्मचारी आपस में वार्तालाप कर रहे हैं। कई साहित्यिक भी इस गोष्ठी में सम्मिलित हुए हैं। 'विचित्रा' के श्रावण अंक में रवीन्द्रनाथ का 'साहित्य धर्म' शीर्षक एक लेख छपा है, इसी को लेकर बहस चल रही है। इसी समय शरत्चन्द्र आ पहुँचे, बहस जमकर होने लगी।

एक ने कहा—शरत् दादा, कवि ने जिनसे आशा छोड़ दी है, लगता है, उनमें एक आप भी हैं। इस लेख में कवि ने अभियोग उपस्थित किए हैं, देखा है उन्हें आपने ?

सुनकर शरत्चन्द्र गंभीरता से बोले—कवि ऐसा करके मेरा कौनसा नुकसान करेंगे, सुनूँ ! मैंने उन्हें जो नुकसान पहुँचाया है, उसके मुकाबले यह कुछ भी नहीं है।

शरत्चन्द्र की इस बात से उपस्थित सभी लोग अवाक् रह गए ! एक ने प्रश्न किया—शरत् दादा, आपने गुरुदेव को कौनसी क्षति पहुँचाई है ?

—पहुँचायी है।

—वह क्या है, सुनें, आपने कौन सी क्षति पहुँचाई है।

—उसे सुनेकर तुम लोग क्या करोगे ? सभी बहुत जिद करने लगे।

—कौन सी क्षति पहुँचाई है, सुनोगे ? रवीन्द्रनाथ से गिरिजा बसु का परिचय करा दिया है।

—तो उससे रवीन्द्रनाथ को क्षति क्यों पहुँचेगी ?

—क्षति नहीं होगी ! इसे तुम क्या समझोगे ! जिसकी होगी, वही समझेगा। शरत्चन्द्र और भी गंभीर होकर बोले—जानते हो गिरिजा कैसा गप्पबाज आदमी है। तिस पर कविता करने की बीमारी लग गई है। अब रवीन्द्रनाथ से उसका परिचय हो गया है, वह अब दोनों जून उनके पास जायगा। वहाँ घंटों गप्प हाँकेगा। रवीन्द्रनाथ का स्वभाव तो जानते ही हो, अपनी हजार असुविधाओं के बावजूद सामने कोई बड़ी बात नहीं करेंगे, मुलाकात करने जाने पर बिना मिले भी नहीं रहेंगे। गिरिजा अब लगातार रवीन्द्रनाथ के यहाँ आया-जाया करेगा, इसका नतीजा यह होगा कि रवीन्द्रनाथ अब एक भी लाइन नहीं लिख पाएँगे।

शरत्चन्द्र ने हाथ चमका कर इस तरह से—एक भी लाइन नहीं लिख पाएँगे—बोले कि वहाँ उपस्थित सभी लोग खिलखिलाकर हँस पड़े।

शरत्चन्द्र ने उसी तरह गंभीरता से कहा—क्यों ? कवि ने मेरा जो नुकसान किया है, उसके मुकाबले में मेरा बदला कम हुआ या अधिक ?

विवेचक रवीन्द्रनाथ

नाट्यकार भूपेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय से शरत्चन्द्र का परिचय था। भूपेन्द्रनाथ के पुत्र हीरेन्द्रनाथ बीच-बीच में शरत्चन्द्र से मिलने आया करते थे। हीरेन्द्रनाथ भी साहित्यिक थे, शरत्चन्द्र को बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे।

हीरेन्द्रनाथ एक दिन शरत्चन्द्र से उनके कलकत्ते के मकान पर मिलने गए। शरत्चन्द्र बैठक में आरामकुर्सी पर लेटे तम्बाकू पी रहे थे। हीरेन्द्रनाथ के अन्दर आकर प्रणाम करते ही शरत्चन्द्र बोले—आओ, आओ, बैठो। तुम्हें आज रवीन्द्रनाथ की कहानी सुनाऊँगा। हीरेन कल उनके यहाँ गया था। कवि की आश्चर्यजनक विवेचना का परिचय पाकर उनके प्रति मेरी श्रद्धा बहुत बढ़ गई है।

—किसकी बात कह रहे हैं? रवीन्द्रनाथ की?

—हाँ, उन्हीं की।

—तब तो कहानी सुननी ही पड़ेगी। कह कर हीरेन्द्रनाथ को बड़ा कुतूहल हुआ। वे जम कर बैठ गये।

नौकर को बुलाकर शरत्चन्द्र ने कहा—जाकर हीरेन के लिए चाय बनाने को कह दो और थोड़ी सी मेरे लिए भी लाना।

नौकर के चले जाने के बाद शरत्चन्द्र ने हँस कर कहा—घर में एक जून में माँगने पर भी एक प्याली से ज्यादा चाय नहीं मिलती है। तुम लोगों के आने पर थोड़ी सी चाय मुझे मिल जाती है। यह कह कर शरत्चन्द्र ने कहना शुरू किया कि उनका चाय पीना कब से शुरू

हुआ। बर्मा में दिन में कितनी बार चाय पीते थे, वहाँ की चाय कैसी होती है। वगैरह कहानियाँ उन्होंने कह सुनाईं। रवीन्द्रनाथ की कहानी का कहीं पता न चला।

हरेन्द्रनाथ रवीन्द्रनाथ की कहानी सुनने के लिए बेचैन हो रहे थे। शरत्चन्द्र की बात काट कर बोले—चाय की कहानी बाद में सुनाइएगा, पहले रवीन्द्रनाथ की कहानी सुनाइए। अच्छी बात है। कहता हूँ, सुनो, कह कर शरत्चन्द्र ने कहानी शुरू की—

आजकल कवि चन्द्रनगर में नाव पर रह रहे हैं। कल हरेन घोष आया था। मुझे कवि के पास पकड़ ले गया। इस बार कवि से कई वर्षों के बाद मुलाकात हुई। इधर-उधर की बहुत सी बातें हुईं। कवि मुझे छुट्टी नहीं देना चाह रहे थे। करीब २॥ घण्टे के बाद जाकर कहीं छुट्टी मिली। लेकिन इसी अर्से में कवि की विवेचना शक्ति का जो परिचय पाया, समझे हिरेन, उससे उनके प्रति मेरी श्रद्धा कई गुना बढ़ गई।

कवि आधा-आधा घण्टे के अन्तर चाय, जलपान, इसके-उसके बहाने सामने से मुझे अपने सेक्रेटरी अनिलचन्द्र के कमरे में चालान करने लगे। कल कवि ने अगर यह व्यवस्था न की होती तो उन्हीं के सामने साँस फूलने से मेरी मौत हो जाती।

समझ नहीं रहे हो? एकबारगी २॥ घण्टे तक धूम्रपान न कर पाने से मैं क्या जीता रहता। कवि ने अगर इस तरह बीच-बीच में मेरा चालान न किया होता तो मैं झूठे बहाने बनाकर उनके सामने से न उठ पाता और बोट के अन्दर जाता भी तो कहाँ? कवि के सामने बैठकर तो धूम्रपान नहीं कर सकता था।

कवि अवश्य ही मेरे नशे की बात जानते हैं, इसीलिए यह व्यवस्था की थी। सचमुच ही कवि की विवेचना आश्चर्यजनक है।

1. **Books are issued for 15 days only but may have to be recalled earlier if urgently required.**
2. **An over-due charge of 25 Paise per day per volume will be charged.**
3. **Books may be renewed on request, at the discretion of the Librarian.**
4. **Periodicals, Rare and Reference books may not be issued and may be consulted only in the Library.**
5. **Books lost, defaced or injured in any way shall have to be replaced or its double price shall be paid by the borrower.**

Help to keep this book fresh, clean & moving